

Chapter एक

मुनियों की जिज्ञासा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
 जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
 तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
 तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
 धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

शब्दार्थ

ॐ—हे प्रभु; नमः—नमस्कार है; भगवते—भगवान् को; वासुदेवाय—वासुदेव (वसुदेव-पुत्र) या आदि भगवान् श्रीकृष्ण को; जन्म-आदि—उत्पत्ति, पालन तथा संहार; अस्य—प्रकट ब्रह्माण्डों का; यतः—जिनसे; अन्वयात्—प्रत्यक्ष रूप से; इतरतः—अप्रत्यक्ष रूप से; च—तथा; अर्थेषु—उद्देश्यों में; अभिज्ञः—पूर्ण रूप से अवगत; स्व-राट्—पूर्णरूप से स्वतन्त्र; तेने—प्रदान किया; ब्रह्म—वैदिक ज्ञान; हृदा—हृदय की चेतना; यः—जो; आदि-कवये—प्रथम सर्जित जीव के लिए; मुह्यन्ति—मोहित होते हैं; यत्—जिनके विषय में; सूरयः—बड़े-बड़े मुनि तथा देवता; तेजः—अग्नि; वारि—जल; मृदाम्—पृथ्वी; यथा—जिस प्रकार; विनिमयः—क्रिया-प्रतिक्रिया; यत्र—जहाँ पर; त्रि-सर्गः—सृष्टि के तीन गुण, सृष्टिकारी शक्तियाँ; अमृषा—सत्यवत्; धाम्ना—समस्त दिव्य सामग्री के साथ; स्वेन—अपने से; सदा—सदैव; निरस्त—अनुपस्थिति के कारण त्यक्त; कुहकम्—मोह को; सत्यम्—सत्य को; परम्—परम; धीमहि—मैं ध्यान करता हूँ।

हे प्रभु, हे वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, हे सर्वव्यापी भगवान्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम सत्य हैं और व्यक्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के समस्त कारणों के आदि कारण हैं। वे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सारे जगत से अवगत रहते हैं और वे परम स्वतंत्र हैं, क्योंकि उनसे परे अन्य कोई कारण है ही नहीं। उन्होंने ही सर्वप्रथम आदि जीव ब्रह्माजी के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। उन्हीं के कारण बड़े-बड़े मुनि तथा देवता उसी तरह मोह में पड़ जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि में जल या जल में स्थल देखकर कोई माया के द्वारा मोहग्रस्त हो जाता है। उन्हीं के कारण ये सारे भौतिक ब्रह्माण्ड, जो प्रकृति के तीन गुणों की प्रतिक्रिया के कारण अस्थायी रूप से प्रकट होते हैं, वास्तविक लगते हैं जबकि ये अवास्तविक होते हैं। अतः मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो भौतिक जगत के भ्रामक रूपों से

सर्वथा मुक्त अपने दिव्य धाम में निरन्तर वास करते हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे ही परम सत्य हैं।

तात्पर्य : भगवान् वासुदेव को नमस्कार करना प्रत्यक्ष रूप से वसुदेव तथा देवकी के दिव्य पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण को इंगित करता है। इस तथ्य की अधिकाधिक व्याख्या इस ग्रंथ में सुस्पष्ट रूप से की जाएगी। यहाँ पर श्री व्यासदेव दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही आदि भगवान् हैं और अन्य सभी रूप उनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पूर्ण अंश या अंशांश हैं। श्रील जीव गोस्वामी ने अपनी कृती *कृष्ण-सन्दर्भ* में इस विषय की विशद व्याख्या की है और आदि जीव ब्रह्मा ने अपने ग्रन्थ *ब्रह्म-संहिता* में श्रीकृष्ण विषयक यथेष्ट व्याख्या की है। *सामवेद* उपनिषद् में भी बताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण देवकी के दिव्य पुत्र हैं। इसीलिए इस स्तुति का यह पहला कथन बताता है कि भगवान् श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं। यदि परम भगवान् किसी दिव्य नाम से जाने जा सकते हैं, तो वह कृष्ण शब्द ही होना चाहिए जिसका अर्थ है सर्वाकर्षक। *भगवद्गीता* में भगवान् ने कई स्थलों पर स्वयं को आदि भगवान् घोषित किया है और इसकी पुष्टि अर्जुन के द्वारा तथा नारद, व्यास आदि बड़े-बड़े मुनियों द्वारा भी की गई है। *पद्म पुराण* में यह भी कहा गया है कि भगवान् के असंख्य नामों में से कृष्ण नाम सर्वप्रमुख है। वासुदेव नाम भगवान् के पूर्ण अंश का सूचक है और भगवान् के अन्य सभी रूप, जो वासुदेव से अभिन्न हैं, इस ग्रन्थ में बताये गये हैं। वासुदेव नाम विशिष्ट रूप से वसुदेव तथा देवकी के दिव्य पुत्र का सूचक है। संन्यासियों में सिद्ध *परमहंसों* द्वारा श्रीकृष्ण का ध्यान सदा ही किया जाता है।

वासुदेव अथवा भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त कारणों के कारण हैं। जितनी भी वस्तुओं का अस्तित्व है, वे सभी भगवान् से ही उद्भूत हैं। ऐसा किस तरह है, इसकी व्याख्या इस ग्रंथ के अगले अध्यायों में की गई है। महाप्रभु श्री चैतन्य ने इस ग्रन्थ को निर्मल पुराण कहा है, क्योंकि इसमें भगवान् श्रीकृष्ण का दिव्य आख्यान है। *श्रीमद्भागवत* का इतिहास भी अत्यन्त महिमा-मय है। इसका संकलन श्री व्यासदेव ने दिव्य ज्ञान में परिपक्वता प्राप्त करने के पश्चात् किया। उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु श्री नारदजी के अनुदेशों के अंतर्गत इसकी रचना की। व्यासदेव ने समस्त

वैदिक वाङ्मय का संकलन किया जिसमें चारों वेद, वेदान्त सूत्र (या ब्रह्म सूत्र), पुराण, महाभारत इत्यादि सम्मिलित हैं। किन्तु वे इतने पर भी संतुष्ट नहीं हुए। जब उनके गुरु नारद ने उनके इस असंतोष को देखा, तो उन्होंने उनको भगवान् कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के विषय में लिखने का उपदेश दिया। ये दिव्य कार्यकलाप इस ग्रन्थ के दशम स्कंध में विशेष रूप से वर्णित हैं। किन्तु इसका सार-तत्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह धीरे-धीरे ज्ञान विकसित करके क्रमशः आगे बढ़े।

यह स्वाभाविक है कि चिन्तनशील मनुष्य सृष्टि का उद्गम जानना चाहता है। रात्रि में वह आकाश में तारों को देखता है और स्वाभाविक है कि वह उनके निवासियों के विषय में कल्पनाएँ करता है। ऐसी जिज्ञासा मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, क्योंकि उसकी चेतना विकसित है, जो पशुओं की तुलना में उच्च है। श्रीमद्भागवतम् के रचयिता ऐसी जिज्ञासाओं का सीधा उत्तर देते हैं। वे कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण समस्त सृष्टियों के उद्गम हैं। वे न केवल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा हैं, वरन् उसके संहर्ता भी हैं। इस दृश्य जगत की उत्पत्ति भगवान् की इच्छा से किसी काल में होती है, कुछ काल तक इसका परि-पालन होता है और तब उनकी ही इच्छा से इसका संहार हो जाता है। अतएव समस्त जागतिक कार्यों के पीछे उनकी परम इच्छा रहती है। निस्सन्देह, ऐसे अनेक नास्तिक हैं जो स्रष्टा पर विश्वास नहीं करते, किन्तु वे अल्पज्ञान के कारण ऐसा करते हैं। उदाहरणार्थ, आधुनिक विज्ञानी ने अन्तरिक्ष उपग्रह बनाये हैं, जिन्हें किसी-न-किसी युक्ति से बाह्य आकाश में प्रक्षिप्त किया जाता है और दूर बैठे विज्ञानी के निर्देश से ये कुछ काल तक आकाश में उड़ते रहते हैं। इसी प्रकार असंख्य तारों तथा ग्रहों से युक्त सारे ब्रह्माण्ड भगवान् की बुद्धि द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

वैदिक साहित्य में यह कहा गया है कि परम सत्य, पुरुषोत्तम भगवान् समस्त पुरुषों में प्रधान हैं। प्रथम सृजित जीव ब्रह्मा से लेकर एक छोटी-से-छोटी चींटी तक सारे जीव ही जीव हैं। ब्रह्मा से ऊपर भी अपनी अपनी क्षमताओं वाले अन्य व्यक्तित्व हैं और भगवान् भी ऐसे ही व्यक्तित्व हैं। जिस तरह अन्य जीव व्यक्ति हैं, उसी तरह भगवान् भी एक व्यक्ति हैं। किन्तु परमेश्वर या परम

पुरुष में उत्कृष्टतम बुद्धि होती है और उनमें विभिन्न प्रकार की श्रेष्ठतम अचिन्त्य शक्तियाँ होती हैं। यदि मनुष्य का मस्तिष्क अन्तरिक्ष-उपग्रह बना सकता है, तब तो कोई भी बहुत आसानी से कल्पना कर सकता है कि मनुष्य से उच्चतर कोटि का मस्तिष्क ऐसी आश्चर्यजनक वस्तुएँ बना सकता है जो कहीं अधिक श्रेष्ठ हों। विचारवान व्यक्ति इस तर्क को आसानी से स्वीकार कर लेगा, किन्तु कुछ ऐसे कट्टर नास्तिक होते हैं, जो इससे कभी सहमत नहीं होंगे। श्रील व्यासदेव परम बुद्धिमान को परमेश्वर रूप में पूरी तरह स्वीकार करते हैं और इस परम बुद्धिमान को *पर, परमेश्वर* या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में सम्बोधित करते हुए नमस्कार करते हैं। यह *परमेश्वर* श्रीकृष्ण ही हैं जैसाकि व्यासदेव ने *भगवद्गीता* में तथा अपने अन्य शास्त्रों में और विशेष रूप से *श्रीमद्भागवत* में स्वीकार किया है। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि उनसे बढ़कर कोई *परतत्त्व* या अन्तिम लक्ष्य नहीं है। इसीलिए श्री व्यासदेव तुरन्त उन *परतत्त्व* श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं जिनकी दिव्य लीलाओं का वर्णन दशम स्कंध में हुआ है।

निष्ठाहीन व्यक्ति सीधे दशम स्कंध में और विशेषकर उन पाँच अध्यायों में पहुँच जाते हैं, जिनमें भगवान् की रासलीला का वर्णन है। *श्रीमद्भागवत* का यह अंश इस महान ग्रन्थ का गुह्यतम अंश है। जब तक किसी को भगवान् का पूरा-पूरा दिव्य ज्ञान प्राप्त न हो ले, तब तक वह भगवान् की पूज्य दिव्य लीलाओं को, जिन्हें *रास-नृत्य* कहा जाता है, तथा गोपियों के साथ उनके प्रेम व्यवहार को ठीक से समझ नहीं सकता। यह विषय अत्यन्त आध्यात्मिक है। केवल ऐसे मुक्त पुरुष, जिन्होंने क्रमशः परमहंस अवस्था प्राप्त कर ली है, इस *रास-नृत्य* का दिव्य आस्वादन कर सकते हैं। अतः श्रील व्यासदेव पाठक को अवसर प्रदान करते हैं कि भगवान् की लीलाओं के सार का आस्वादन करने के पूर्व वे धीरे-धीरे आत्म-साक्षात्कार का विकास करें। इसीलिए वे जान बूझकर गायत्री मन्त्र *धीमहि* का आवाहन करते हैं। यह गायत्री मन्त्र अध्यात्म में बढ़े-चढ़े व्यक्तियों के निमित्त है। जब कोई गायत्री मन्त्र का उच्चारण करने में सफल हो जाता है, तब वह भगवान् की दिव्य स्थिति तक प्रवेश पा सकता है। अतः गायत्री मन्त्र के सफल जप के लिए

मनुष्य में ब्राह्मण जैसे गुणों का समावेश होना चाहिए या फिर उसे पूर्ण रूप से सतोगुणी होना चाहिए। तभी वह भगवान् के नाम, यश, गुणों आदि की दिव्य अनुभूति प्राप्त कर सकता है।

श्रीमद्भागवत भगवान् की अन्तरंगा शक्ति द्वारा प्रदर्शित उनके स्वरूप का आख्यान है और यह अन्तरंगा शक्ति हमारे अनुभवगम्य दृश्य जगत को उत्पन्न करने वाली बहिरंगा शक्ति से भिन्न होती है। श्रील व्यासदेव ने इस श्लोक में इन दोनों शक्तियों में अन्तर स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि प्रकट अन्तरंगा शक्ति वास्तविक है, जब कि भौतिक जगत के रूप में प्रकट होने वाली बहिरंगा शक्ति अनित्य है और मृग-मरीचिका जैसी है। मृग-मरीचिका में वास्तविक जल नहीं रहता, केवल जल का आभास रहता है। वास्तविक जल तो कहीं अन्यत्र रहता है। यह दृश्य जगत एक वास्तविकता जैसा प्रतीत होता है, किन्तु वास्तविकता तो आध्यात्मिक जगत में होती है और यह तो उसकी छाया (प्रतिबिम्ब) मात्र है। परम सत्य तो वैकुण्ठलोक (चिदाकाश) में हैं, भौतिक आकाश में नहीं। भौतिक आकाश में प्रत्येक वस्तु सापेक्ष सत्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक सत्य किसी अन्य पर आश्रित होता है। यह दृश्य जगत प्रकृति के तीनों गुणों की अन्तःक्रिया से बनता है और यह अनित्य जगत बद्धजीव के मोहग्रस्त मन को वास्तविकता का भ्रम प्रस्तुत करने वाला होता है। बद्धजीव अनेकानेक योनियों में प्रकट होते हैं जिनमें ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र जैसे उच्चतर देवता भी सम्मिलित हैं। यथार्थ में प्रकट जगत में कोई वास्तविकता नहीं है। किन्तु यह वास्तविक जैसा प्रतीत होता है। वास्तविकता का अस्तित्व तो वैकुण्ठलोक में है, जहाँ पुरुषोत्तम भगवान् अपनी दिव्य सामग्री के साथ नित्य विद्यमान रहते हैं।

किसी जटिल निर्माण कार्य का मुख्य इंजीनियर निर्माण-कार्य में स्वयं भाग नहीं लेता, किन्तु वह इसके कोने-कोने से परिचित रहता है, क्योंकि सारा कार्य उसी के निर्देशन में सम्पन्न होता है। वह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से निर्माण-कार्य के विषय में हर बात जानता है। इसी प्रकार, भगवान् भी इस दृश्य जगत के सर्वोपरि अभियन्ता होने के कारण इसके कोने-कोने से परिचित हैं, यद्यपि सारे कार्य देवताओं द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। इस भौतिक सृष्टि में ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक कोई भी स्वतंत्र नहीं है। हर स्थान पर भगवान् का हाथ देखने में आता है। सभी

भौतिक तत्त्वों के साथ-साथ आध्यात्मिक स्फुलिंगो का उद्भव उन्हीं से होता है। इस भौतिक जगत में और जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह भौतिक तथा आध्यात्मिक (अपरा तथा परा) शक्तियों की ही अन्तःक्रियाओं से होता है, जो परम सत्य भगवान् श्रीकृष्ण से उद्भूत होती हैं। एक रसायन-शास्त्री अपनी प्रयोगशाला में बैठे-बैठे हाइड्रोजन तथा आक्सीजन मिलाकर जल उत्पन्न कर सकता है। किन्तु वास्तव में जीव तो परमेश्वर के निर्देशानुसार प्रयोगशाला में कार्य करता है और वह रसायनवेत्ता जिन सामग्रियों से कार्य सम्पन्न करता है, वे भगवान् द्वारा प्रदान की गई हैं। भगवान् प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक वस्तु को जानते हैं तथा वे सभी सूक्ष्म बातों को जानने वाले हैं तथा सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। उनकी तुलना सोने की खान से की जा सकती है, जबकि विभिन्न रूपों वाले दृश्य जगत की तुलना सोने से बनी विविध वस्तुओं से की जा सकती है, जैसे सोने की अँगूठी, हार इत्यादि। सोने की अँगूठी तथा सोने के हार के गुण खान में पाये जाने वाले सोने के ही समान होते हैं, किन्तु खान का सोना परिमाण में भिन्न है। अतः परम सत्य एक ही है और साथ ही साथ भिन्न भी है। परम सत्य के तुल्य पूरी तरह से कुछ भी नहीं है, किन्तु साथ ही, परम सत्य से स्वतन्त्र भी कुछ नहीं है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शिल्पी ब्रह्मा से लेकर एक नगण्य चींटी तक सारे बद्धजीव सृजन का कार्य करते हैं, किन्तु इनमें से कोई भी परमेश्वर से स्वतन्त्र नहीं है। भौतिकतावादी व्यक्ति व्यर्थ ही सोचता है कि उसके अतिरिक्त कोई अन्य स्रष्टा नहीं है। यह *माया* या भ्रम कहलाता है। अल्पज्ञान के कारण भौतिकतावादी अपनी अपूर्ण इन्द्रियों के परे देख नहीं पाता और इस प्रकार से वह सोचता है कि पदार्थ, किसी श्रेष्ठ बुद्धि के बिना ही, स्वतः आकार ग्रहण करता है। किन्तु श्रील व्यासदेव ने इस श्लोक में इसका खंडन किया है, “चूँकि परम पूर्ण या परम सत्य प्रत्येक वस्तु के उद्गम हैं, अतः परम सत्य के शरीर से स्वतन्त्र कोई भी वस्तु नहीं हो सकती है।” देह के साथ जो कुछ घटित होता है, वह देही को तुरन्त ज्ञात हो जाता है। इसी प्रकार यह सृष्टि उस परम पूर्ण का शरीर है, अतः इस सृष्टि में जो कुछ घटित होता है उसे वे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जानते हैं।

श्रुति मन्त्र में यह भी कहा गया है कि परम पूर्ण या ब्रह्म समस्त वस्तुओं का चरम उद्गम हैं। प्रत्येक वस्तु उन्हीं से उद्भूत है, उन्हीं के द्वारा पालित है और अन्त में उन्हीं में प्रवेश कर जाती है। यही प्रकृति का नियम है। स्मृति मन्त्र में इसी की पुष्टि की गई है। यह कहा गया है कि ब्रह्मा के कल्प के प्रारम्भ में जिस उद्गम से सारी वस्तुएँ उद्भूत होती हैं और अन्ततः जिस आगार में वे प्रवेश करती हैं, वह परम सत्य या ब्रह्म है। भौतिक विज्ञानी यह मानकर चलते हैं कि ग्रह मंडल का उद्गम सूर्य है, किन्तु वे सूर्य का उद्गम नहीं बता पाते। यहाँ पर इस चरम उद्गम की व्याख्या की गई है। वैदिक वाङ्मय के अनुसार ब्रह्मा, जो सूर्य के तुल्य माने जा सकते हैं, परम स्रष्टा नहीं हैं। इस श्लोक में कहा गया है कि ब्रह्मा को वैदिक ज्ञान भगवान् के द्वारा प्रदान किया गया। कोई चाहे तो यह तर्क कर सकता है कि प्रथम जीव होने के नाते, ब्रह्मा को प्रेरित नहीं किया जा सकता था क्योंकि उस समय कोई दूसरा व्यक्ति जिवित न था। यहाँ पर यह कहा गया है कि परमेश्वर ने गौण स्रष्टा ब्रह्मा को प्रेरित किया जिससे वे सृजन कार्य कर सकें। अतः समस्त सृष्टि के पीछे जो परम बुद्धि कार्य करती है, वह परब्रह्म श्रीकृष्ण हैं। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे ही पदार्थ की समग्रता को गठित करने वाली सर्जक शक्ति यानी प्रकृति का निरीक्षण करते हैं। अतएव श्री व्यासदेव ब्रह्मा की नहीं, अपितु परमेश्वर की पूजा करते हैं जो सृष्टि-कार्यों में ब्रह्मा का मार्गदर्शन करने वाले हैं। इस श्लोक में अभिज्ञः तथा स्वराट् शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। ये दो शब्द परमेश्वर और अन्य सभी जीवों में अन्तर बताते हैं। दूसरा कोई भी जीव अभिज्ञः अथवा स्वराट् नहीं है, अर्थात् कोई भी जीव न तो पूरी तरह जानता है, न ही पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। यहाँ तक कि सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा को भी परमेश्वर का ध्यान करना होता है। तो फिर आइन्स्टाइन जैसे महान विज्ञानियों के विषय में क्या कहा जा सकता है? ऐसे विज्ञानियों का मस्तिष्क निश्चित रूप से किसी मनुष्य की उपज नहीं है। जब कोई विज्ञानी ऐसा मस्तिष्क नहीं बना सकता, तो फिर उन मूर्ख नास्तिकों का क्या कहना जो भगवान् की सत्ता को चुनौती देते हैं? यहाँ तक कि मायावादी निर्विशेषवादी जो अपने को भगवान् से एकाकार होने की डींग मारते रहते हैं, न तो अभिज्ञः हैं, न स्वराट्। ऐसे निर्विशेषवादी भगवान् का तादात्म्य प्राप्त करने के लिए

ज्ञानार्जन हेतु कठिन तपस्या करते हैं। किन्तु अन्ततः वे किसी ऐसे धनी शिष्य पर आश्रित हो जाते हैं, जो मठ तथा मन्दिर बनवाने के लिए उन्हें धन प्रदान करता है। रावण या हिरण्यकशिपु जैसे नास्तिकों को भगवान् की सत्ता का विरोध करने के पूर्व कठिन तपस्या करनी पड़ी थी, किन्तु अन्त में वे असहाय बन गये और जब भगवान् क्रूर मृत्यु के रूप में उनके समक्ष प्रकट हुए, तो वे अपने आपको बचा नहीं पाये। यही हाल उन आधुनिक नास्तिकों का है, जो भगवान् की सत्ता की अवमानना करते हैं। ऐसे नास्तिकों को वैसा ही दण्ड मिलेगा, क्योंकि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। जब-जब लोग ईश्वर की सत्ता की उपेक्षा करते हैं, तब-तब प्रकृति तथा उसके नियम उन्हें दण्ड देते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* के इस सुप्रसिद्ध श्लोक द्वारा भी होती है— *यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः—जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब हे अर्जुन! में स्वयं अवतरित होता हूँ।*” (*भगवद्गीता* ४.७)

परमेश्वर परम पूर्ण हैं, इसकी पुष्टि समस्त *श्रुति मन्त्रों* द्वारा होती है। *श्रुति मन्त्रों* में ही कहा गया है कि परम पूर्ण भगवान् ने पदार्थ के ऊपर दृष्टि फेरी तो सारे जीव उत्पन्न हो गये। ये जीव भगवान् के अंश-रूप हैं। वे ही इस विशाल भौतिक सृष्टि को आध्यात्मिक स्फुलिंग रूपी बीज से आविष्ट करते हैं और इस प्रकार सृजनात्मक शक्तियाँ चालू हो जाती हैं जिससे अनेक आश्चर्यजनक सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। नास्तिक यह तर्क कर सकता है कि ईश्वर घड़ीसाज से अधिक पटु नहीं हैं, किन्तु ईश्वर इससे अधिक पटु होते हैं, क्योंकि वे मशीनों के नर तथा मादा दोनों रूपों को उत्पन्न कर सकते हैं। फिर ये विविध नर-मादा मशीनें, ईश्वर के आदेश की प्रतीक्षा किये बिना, अपनी जैसी असंख्य मशीनें उत्पन्न करती जाती हैं। यदि मनुष्य ऐसी मशीन का जोड़ा बना सके जो उसके अनदेखे ही अन्य मशीनें उत्पन्न कर सके, तब जाकर वह ईश्वर की बुद्धि के पास पहुँच सकता है। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं, क्योंकि प्रत्येक मशीन पर अलग-अलग कार्य करना होता है। अतः ईश्वर की तरह कोई भी व्यक्ति सृजन नहीं कर सकता। ईश्वर का अन्य नाम *असमौर्ध्व* है, जिसका अर्थ है कि कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। *परं सत्यम्* वे हैं जिनके न तो कोई समतुल्य है न उनसे श्रेष्ठ। इसकी पुष्टि *श्रुति मन्त्रों* में की गई है। ऐसा कहा गया है कि इस

भौतिक ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के पूर्व भगवान् ही विद्यमान थे जो हर किसी के स्वामी हैं। उन्होंने ही ब्रह्मा को वैदिक ज्ञान का उपदेश किया। इन्हीं भगवान् की आज्ञा सब प्रकार से पालनीय है। जो कोई भव-बन्धन से छूटना चाहता है, उसे उनकी शरण में जाना होगा। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी की गई है।

जब तक मनुष्य परमेश्वर के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करता, तब तक उसका मोहग्रस्त होना निश्चित है। जब कोई बुद्धिमान पुरुष कृष्ण के चरणारविन्द की शरण ग्रहण करके कृष्ण को समस्त कारणों का कारण मान लेता है, जैसा कि *भगवद्गीता* में भी कहा गया है, तभी वह व्यक्ति *महात्मा* बन सकता है। किन्तु ऐसे महात्मा यदा-कदा ही दिखते हैं। केवल ऐसे महात्मा समझ सकते हैं कि भगवान् ही समस्त सृष्टियों के आदि कारण हैं। वे *परम* या परम सत्य हैं, क्योंकि अन्य सारे सत्य उनसे जुड़े हुए हैं। वे सर्वज्ञ हैं। उनके लिए कोई मोह नहीं होता।

कुछ मायावादी विद्वान तर्क करते हैं कि *श्रीमद्भागवत* की रचना श्री व्यासदेव ने नहीं की और इन्हीं में कुछ लोग अपने विचार रखते हैं कि यह ग्रन्थ आधुनिक रचना है और वोपदेव नामक किसी व्यक्ति ने लिखा है। ऐसे व्यर्थ के तर्कों का खण्डन करते हुए श्री श्रीधर स्वामी कहते हैं कि कई प्राचीनतम पुराणों में *भागवतम्* का उल्लेख हुआ है। *भागवत* का पहला श्लोक गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ होता है। इसका उल्लेख प्राचीनतम पुराण, *मत्स्य पुराण* में है। उस पुराण में *भागवत* में आये गायत्री मन्त्र का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि आध्यात्मिक उपदेशों से युक्त अनेक कथाएँ हैं जो गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ होती हैं और उसमें वृत्रासुर का इतिहास दिया गया है। यह भी उल्लेख है कि जो कोई पूर्णमासी के दिन इस महान ग्रन्थ का दान करता है उसे जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त होती है और वह भगवान् के धाम वापस जाता है। अन्य पुराणों में भी *भागवत* का सन्दर्भ आया है, जिसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि यह ग्रन्थ बारह स्कन्धों में पूर्ण हुआ है, जिसमें अठारह हजार श्लोक हैं। *पद्म पुराण* में भी गौतम तथा महाराज अम्बरीष की वार्ता में *भागवत* का उल्लेख हुआ है। वहाँ पर राजा को उपदेश दिया गया है कि यदि वे भवबन्धन से मोक्ष चाहते हैं, तो नियमित रूप से *श्रीमद्भागवत* का पाठ करें। ऐसी परिस्थितियों

के अन्तर्गत *भागवत* की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। विगत पाँच सौ वर्षों में अनेक प्रकाण्ड विद्वानों तथा आचार्यों, यथा जीव गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के पश्चात् भी अन्य अनेक प्रसिद्ध विद्वानों ने *भागवत* पर विशद टीकाएँ की हैं। ऐसे में गम्भीर अध्येता को चाहिए कि दिव्य उपदेशों के अधिक आस्वादन के लिए इन सबका अध्ययन करे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने मौलिक तथा शुद्ध यौन-मनोविज्ञान (आदि-रस) की विशेष विवेचना की है, जो समस्त भौतिक उन्माद से रहित है। *यह सारी भौतिक सृष्टि विषयी जीवन के सिद्धान्त के आधार पर गतिशील है।* आधुनिक सभ्यता में विषयी जीवन ही सारे कार्यकलापों का केन्द्रबिन्दु है। जिधर भी कोई अपना मुख मोड़ता है, उधर उसे विषयी जीवन का प्राधान्य देखने को मिलता है। अतः विषयी जीवन अवास्तविक नहीं है। इसकी वास्तविकता आध्यात्मिक जगत में अनुभव की जाती है। भौतिक विषयी जीवन तो मौलिक तथ्य का विकृत प्रतिबिम्ब मात्र है। वास्तविक तथ्य तो परम सत्य में है, अतः परम सत्य कभी निराकार नहीं हो सकता। निराकार रहते हुए शुद्ध यौन जीवन रख पाना सम्भव नहीं है। फलस्वरूप निर्विशेषवादी चिन्तकों ने गर्हित सांसारिक विषयी जीवन को अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन दिया है, क्योंकि उन्होंने परम सत्य की निराकारता (निर्विशेषता) पर अत्यधिक बल दिया है। इसीलिए काम के वास्तविक आध्यात्मिक रूप को न जानने के कारण, मनुष्यों ने विकृत भौतिक विषयी जीवन को ही सब कुछ मान रखा है। रुग्ण भौतिक अवस्था के विषयी जीवन तथा आध्यात्मिक विषयी जीवन में अन्तर है।

यह *श्रीमद्भागवत* पूर्वा ग्रहरहित पाठक को धीरे-धीरे अध्यात्म की पूर्णावस्था तक ले जाने वाला है। यह मनुष्य को भौतिक कार्यों के तीन प्रकार—सकाम कर्म, काल्पनिक दर्शन तथा कार्यकारी देवताओं की पूजा से ऊपर उठाने में सक्षम बनाएगा जिनका विधान वैदिक श्लोकों में है।

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

धर्मः—धार्मिकता; प्रोज्झित—पूर्ण रूप से अस्वीकृत; कैतवः—सकाम विचार से प्रच्छन्न; अत्र—यहाँ; परमः—सर्वोच्च; निर्मत्सराणाम्—शतप्रतिशत शुद्ध हृदय वालों के; सताम्—भक्तों को; वेद्यम्—जानने योग्य; वास्तवम्—वास्तविक; अत्र—यहाँ; वस्तु—वस्तु, चीज; शिवदम्—कल्याण; ताप-त्रय—तीन प्रकार के कष्ट; उन्मूलनम्—समूल नष्ट करना; श्रीमत्—सुन्दर; भागवते—भागवत पुराण में; महा-मुनि—महामुनि (व्यासदेव) द्वारा; कृते—संग्रह किया गया, रचना की गई; किम्—क्या है; वा—आवश्यकता; परैः—अन्य; ईश्वरः—परमेश्वर; सद्यः—तुरन्त; हृदि—हृदय में; अवरुध्यते—टढ़ हो गया; अत्र—यहाँ; कृतिभिः—पवित्र व्यक्तियों द्वारा; शुश्रूषुभिः—संस्कार द्वारा; तत्-क्षणात्—अविलम्ब ।

यह भागवत पुराण, भौतिक कारणों से प्रेरित होने वाले समस्त धार्मिक कृत्यों को पूर्ण रूप से बहिष्कृत करते हुए, सर्वोच्च सत्य का प्रतिपादन करता है, जो पूर्ण रूप से शुद्ध हृदय वाले भक्तों के लिए बोधगम्य है। यह सर्वोच्च सत्य वास्तविकता है जो माया से पृथक् होते हुए सबों के कल्याण के लिए है। ऐसा सत्य तीनों प्रकार के संतापों को समूल नष्ट करने वाला है। महामुनि व्यासदेव द्वारा (अपनी परिपक्वावस्था में) संकलित यह सौंदर्यपूर्ण भागवत ईश्वर-साक्षात्कार के लिए अपने आप में पर्याप्त है। तो फिर अन्य किसी शास्त्र की क्या आवश्यकता है? जैसे जैसे कोई ध्यानपूर्वक तथा विनीत भाव से भागवत के सन्देश को सुनता है, वैसे वैसे ज्ञान के इस संस्कार (अनुशीलन) से उसके हृदय में परमेश्वर स्थापित हो जाते हैं।

तात्पर्य : धर्म में चार मूल विषय सम्मिलित हैं—पुण्य कर्म, आर्थिक विकास, इन्द्रियतुष्टि तथा भवबन्धन से मोक्ष। अधार्मिक जीवन बर्बर अवस्था है। वस्तुतः मानव जीवन का समारम्भ धर्म के सूत्रपात से होता है। आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन—ये पशु जीवन के चार नियम (लक्षण) हैं। ये चारों पशुओं तथा मनुष्यों में समान रूप से लागू होते हैं। किन्तु मनुष्यों में एक अतिरिक्त कार्य धर्म होता है। धर्म के बिना मनुष्य-जीवन पशु जीवन से ज्यादा अच्छा नहीं है।

अतः प्रत्येक मानव समाज में धर्म का कोई न कोई रूप पाया जाता है, जिसका उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार है और जो ईश्वर के साथ मनुष्य के शाश्वत सम्बन्ध को बताने वाला है।

मानव सभ्यता की निम्नतर अवस्थाओं में भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व दिखाने के लिए सदैव होड़ लगी रहती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए निरन्तर स्पर्धा चलती रहती है। ऐसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्य धर्म की ओर मुड़ता है। इस तरह वह कुछ भौतिक लाभ प्राप्त करने के लिए पुण्य कर्म या धार्मिक कार्य करता है। किन्तु यदि ऐसे भौतिक लाभ अन्य साधनों से प्राप्त हो जाते हैं, तो तथाकथित धर्म उपेक्षित हो जाता है। आधुनिक सभ्यता का यही हाल है। मनुष्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होता जा रहा है अतः वर्तमान समय में वह धर्म में अधिक रुचि नहीं लेता। गिरजाघर, मसजिदें या मन्दिर एक तरह से अब निर्जन हैं। लोगों की रुचि अपने पूर्वजों द्वारा बनाए गये धार्मिक स्थलों में न होकर फैक्टरियों, दुकानों तथा सिनेमाघरों की ओर अधिक है। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्म का आचरण किसी न किसी आर्थिक लाभ के लिए ही किया जाता है। आर्थिक लाभ की आवश्यकता इन्द्रियतृप्ति के लिए पड़ती है। प्रायः इन्द्रियतृप्ति की खोज से ऊब कर मनुष्य मोक्ष की ओर मुड़ता है और परमेश्वर से तदाकार होने का प्रयत्न करता है। फलस्वरूप, ये सारी दशाएँ केवल इन्द्रियतृप्ति के विभिन्न प्रकार बन जाती हैं।

वेदों में उपर्युक्त चारों कर्मों की संस्तुति नियामक के रूप में की गई है, जिससे इन्द्रियतृप्ति के लिए अनावश्यक स्पर्धा उत्पन्न न हो। किन्तु *श्रीमद्भागवत* इन्द्रियतृप्ति सम्बन्धी इन सब कर्मों से परे है। यह नितान्त दिव्य साहित्य है, जो उन्हीं शुद्ध भगवद्भक्तों द्वारा समझा जा सकता है, जो स्पर्धात्मक इन्द्रियतृप्ति से परे रहते हैं। इस भौतिक जगत में पशु तथा पशु, मनुष्य तथा मनुष्य, समाज तथा समाज और राष्ट्र तथा राष्ट्र के मध्य तीक्ष्ण स्पर्धा चल रही है। लेकिन भगवान् के भक्त ऐसी स्पर्धा से बहुत ऊपर रहते हैं। वे भौतिकतावादी व्यक्ति से स्पर्धा नहीं करते, क्योंकि वे भगवद्धाम वापस जाने के मार्ग पर होते हैं, जहाँ जीवन शाश्वत तथा आनन्दमय होता है। ऐसे अध्यात्मवादी द्वेषरहित और शुद्ध हृदय वाले होते हैं। भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति

से ईर्ष्या करता है, अतएव स्पर्धा चलती रहती है। लेकिन भगवान् के दिव्य भक्त न केवल भौतिक ईर्ष्या-द्वेष से रहित होते हैं, अपितु सबका कल्याण चाहते हैं और वे ईश्वर को केन्द्र मानकर एक स्पर्धारहित समाज स्थापित करने का प्रयास करते रहते हैं। स्पर्धारहित समाज की वर्तमान समाजवादी विचारधारा कृत्रिम है, क्योंकि उसमें तानाशाह के पद के लिए स्पर्धा चलती है। वेदों की दृष्टि से या सामान्य जन के क्रियाकलापों की दृष्टि से, इन्द्रियतृप्ति ही भौतिक जीवन का मूलाधार है। वेदों में तीन मार्ग बताये गये हैं। पहला है श्रेष्ठतर लोकों की प्राप्ति के उद्देश्य से सकाम कर्म करना। दूसरा है देवलोक जाने के लिए विभिन्न देवताओं की पूजा करना और तीसरा है परम सत्य तथा उनके निर्विकार पक्ष का साक्षात्कार करके उससे तदाकार होना।

किन्तु परम सत्य का निराकार पक्ष ही सर्वोत्कृष्ट नहीं है। इससे भी बढ़कर परमात्मा-स्वरूप है और इसके भी ऊपर है परम सत्य या भगवान् का साकार रूप। *श्रीमद्भागवत* परम सत्य के साकार स्वरूप के विषय में जानकारी प्रदान करता है। यह समस्त निर्विशेषवादी साहित्य तथा वेदों के *ज्ञानकाण्ड* विभाग से श्रेष्ठ है। यह *कर्मकाण्ड* विभाग तथा *उपासना काण्ड* विभाग से भी उच्चतर है, क्योंकि यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा का निर्देश करता है। *कर्म-काण्ड* में और अधिक इन्द्रियतृप्ति के लिए स्वर्ग जाने की स्पर्धा चलती है। इसी प्रकार *ज्ञान-काण्ड* तथा *उपासना-काण्ड* में भी स्पर्धा चलती है। *श्रीमद्भागवत* इन सबों से श्रेष्ठ है, क्योंकि इसका लक्ष्य परम सत्य है, जो इन समस्त विभागों का मूल है। *श्रीमद्भागवत* से मूल तत्त्व तथा श्रेणियाँ दोनों जाने जा सकते हैं। यह मूल तत्त्व परम सत्य परमेश्वर हैं और अन्य सारे उद्भासन शक्ति के सापेक्ष रूप हैं।

मूल तत्त्व से अलग कुछ नहीं है, किन्तु साथ ही, सारी शक्तियाँ मूल तत्त्व से पृथक् हैं। यह विचारधारा विरोधमूलक नहीं है। *श्रीमद्भागवत वेदान्त सूत्र* के इस एक-तथा-अनेक युगपत् दर्शन (भेदाभेदवाद) को स्पष्ट रूप से घोषित करता है, जो *जन्माद्यस्य* सूत्र से प्रारम्भ होता है।

यह ज्ञान कि भगवान् की शक्ति भगवान् के साथ एक तथा उनसे भिन्न भी है, उन मनोधर्मियों पर करारी चपत है, जो इस शक्ति को परमेश्वर के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। जब यह ज्ञान

वास्तविक रूप से समझ में आ जाता है, तो अद्वैतवाद तथा द्वैतवाद की धारणा अपूर्ण लगने लगती है। इस दिव्य चेतना का विकास, जो एक ही समय में एक तथा भिन्न की विचारधारा पर दीक्षित हो जाने से तीनों प्रकार के कष्टों से तुरन्त ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। ये तीन प्रकार के कष्ट हैं—(१) मन तथा शरीर से उत्पन्न दुख, (२) अन्य जीवों द्वारा पहुँचाये गये दुख तथा (३) प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न दुख जिन पर किसी का वश नहीं होता है। *श्रीमद्भागवत* का शुभारम्भ परम पुरुष के प्रति भक्त के आत्मसमर्पण (शरणागति) से होता है। भक्त भलीभाँति जान रहा होता है कि वह भगवान् से एक होते हुए भी उसकी स्थिती उनके नित्य दास के रूप में है। भौतिक विचारधारा के अनुसार मनुष्य झूठे ही अपने को अपने आसपास की सब चीजों का स्वामी मानता है, इसीलिए वह जीवन में तीन प्रकार के संतापों से पीड़ित रहता है। किन्तु ज्योंही उसे नित्य दास रूप में अपनी इस वास्तविक स्थिति का पता चल जाता है, तो वह तुरन्त इन सभी कष्टों से मुक्त हो जाता है। जीव जब तक भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जमाने का प्रयास करता है, तब तक वह परमेश्वर का दास नहीं बन सकता। भगवान् की सेवा मनुष्य के आध्यात्मिक स्वरूप की विशुद्ध चेतना द्वारा की जाती है। इस सेवा से वह समस्त भौतिक अवरोधों से तुरन्त मुक्त हो जाता है।

इससे भी बढ़कर, *श्रीमद्भागवत* श्री व्यासदेव द्वारा वेदान्त-सूत्र पर की गई व्यक्तिगत टीका है। इसका लेखन उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन की परिपक्वावस्था में नारदजी के अनुग्रह से किया। श्री व्यासदेव भगवान् नारायण के प्रामाणिक अवतार हैं, अतः उनकी प्रामाणिकता पर किसी प्रकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। वे अन्य सभी वैदिक साहित्य के भी रचयिता हैं, तो भी वे *श्रीमद्भागवत* के अध्ययन को उन सबों से बढ़कर बताते हैं। अन्य पुराणों में विभिन्न विधियाँ दी गई हैं, जिनके द्वारा देवताओं की पूजा की जा सकती है। किन्तु *भागवत* में केवल परमेश्वर का उल्लेख है। परमेश्वर समग्र शरीर हैं और अन्य सारे देवता इस शरीर के विभिन्न अंग हैं। फलस्वरूप परमेश्वर की पूजा करने पर अन्य देवताओं को पूजने की आवश्यकता नहीं रहती।

परमेश्वर तुरन्त ही भक्त के हृदय में स्थित हो जाते हैं। भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने *श्रीमद्भागवत* को निर्मल पुराण बताया है, अतः यह अन्य समस्त पुराणों से भिन्न है।

इस दिव्य सन्देश को ग्रहण करने की उचित विधि यह है कि इसे विनीत भाव से सुना जाय। चुनौती देने की प्रवृत्ति से इस दिव्य सन्देश को ग्रहण करने में मदद नहीं मिल सकती। यहाँ पर उचित मार्गदर्शन के लिए जो एक शब्द प्रयुक्त है, वह है *शुश्रूषु*। मनुष्य को इस दिव्य सन्देश को सुनने के लिए उत्सुक रहना चाहिए। निष्ठापूर्वक सुनने (श्रवण करने) की कामना ही इसकी पहली योग्यता है।

कम भाग्यशाली व्यक्ति इस *श्रीमद्भागवत* को सुनने में बिल्कुल रुचि नहीं दिखाते। इसकी विधि सरल है, किन्तु इसे व्यवहार में लाना कठिन है। भाग्यहीन व्यक्तियों को व्यर्थ सामाजिक तथा राजनीतिक बातें सुनने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है, किन्तु जब उन्हें भक्तों की सभा में *श्रीमद्भागवत* सुनने के लिए आमन्त्रित किया जाता है, तो वे सहसा अन्यमनस्क हो उठते हैं। कभी-कभी *भागवत* के व्यवसायी कथावाचक सहसा भगवान् की गुह्य लीलाओं में पहुँच जाते हैं और उनकी व्याख्या यौन (अश्लील) साहित्य के रूप में करते हैं। *श्रीमद्भागवत* तो प्रारम्भ से सुनने के लिए निर्मित है। जो लोग इस ग्रन्थ को आत्मसात् कर सकते हैं, उनका उल्लेख इसी श्लोक में है, “कोई व्यक्ति अनेक पुण्य कर्मों के बाद *श्रीमद्भागवत* सुनने के योग्य बन पाता है।” महामुनि व्यासदेव बुद्धिमान एवं विचारवान व्यक्तियों को आश्वासन देते हैं कि *श्रीमद्भागवत* का श्रवण करने से उन्हें भगवान् का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो सकता है। वेदों में वर्णित साक्षात्कार की विभिन्न अवस्थाओं को पार किये बिना ही, इस सन्देश को ग्रहण करने के लिए सहमत होने मात्र से, मानव परमहंस पद को तुरन्त प्राप्त कर सकता है।

निगमकल्पतरुर्गलितं फलं

शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।

पिबत भागवतं रसमालयं

मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

निगम—वैदिक साहित्य; कल्प-तरो:—कल्पतरु का; गलितम्—पूर्णत रूप से परिपक्व; फलम्—फल; शुक—श्रीमद्भागवत के मूल वक्ता श्रील शुकदेव गोस्वामी के; मुखात्—होठों से; अमृत—अमृत; द्रव—तरल अतएव सरलता से निगलने योग्य; संयुतम्—सभी प्रकार से पूर्ण; पिबत—पान करो; भागवतम्—भगवान् के साथ चिर सम्बन्ध के विज्ञान से युक्त ग्रन्थ को; रसम्—रस (जो आस्वाद्य है वह); आलयम्—मुक्ति प्राप्त होने तक या मुक्त अवस्था में भी; मुहुः—सदैव; अहो—हे; रसिकाः—रस का पूर्ण ज्ञान रखने वाले रसिक जन; भुवि—पृथ्वी पर; भावुकाः—पटु तथा विचारवान ।

हे विज्ञ एवं भावुक जनों, वैदिक साहित्य रूपी कल्पवृक्ष के इस पक्व फल श्रीमद्भागवत को जरा चखो तो। यह श्री शुकदेव गोस्वामी के मुख से निस्सृत हुआ है, अतएव यह और भी अधिक रुचिकर हो गया है, यद्यपि इसका अमृत-रस मुक्त जीवों समेत समस्त जनों के लिए पहले से आस्वाद्य था।

तात्पर्य : पिछले दो श्लोकों से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो गया है कि श्रीमद्भागवत दिव्य साहित्य है, जो अपने दिव्य गुणों के कारण अन्य समस्त वैदिक शास्त्रों को पीछे छोड़ देता है। यह समस्त लौकिक कार्यकलापों तथा लौकिक ज्ञान से परे है। इस श्लोक में बताया गया है कि श्रीमद्भागवत न केवल उत्कृष्ट साहित्य है, अपितु यह समस्त वैदिक साहित्य का परिपक्व फल है। दूसरे शब्दों में, यह सभी वैदिक ज्ञान का नवनीत (सार) है। यह सब दृष्टि में रखते हुए, यह समझना चाहिए कि धैर्य एवं नम्रता से श्रवण करना निश्चित रूप से आवश्यक है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीमद्भागवत द्वारा प्रदत्त सन्देशों तथा उपदेशों को अत्यन्त आदर के साथ तथा ध्यानपूर्वक ग्रहण करे।

वेदों की तुलना कल्पवृक्ष से की गयी है, क्योंकि उनमें मनुष्य के लिए ज्ञेय सारी बातें पाई जाती हैं। उनमें सांसारिक आवश्यकताओं के साथ-साथ आध्यात्मिक साक्षात्कार का भी वर्णन हुआ है। वेदों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सैन्य, चिकित्सीय, रासायनिक, भौतिक, पराभौतिक विषयों से सम्बद्ध ज्ञान के नियामक सिद्धान्त तथा जीवन के लिए जो भी आवश्यक है, सभी का समावेश है। इनसे भी बढ़कर, इसमें आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए विशेष निर्देश हैं। नियामक ज्ञान में जीव को क्रमशः आध्यात्मिक स्तर तक ऊपर उठाया जाता है और सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूति तो यह जान लेना है कि भगवान् समस्त रसों के आगार हैं।

इस भौतिक जगत में उत्पन्न होने वाले प्रथम जीव ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक, सारे जीव इन्द्रियों द्वारा कोई न कोई रस प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं। इन इन्द्रिय सुखों को पारिभाषिक रूप से रस कहा जाता है। ऐसे रस कई प्रकार के होते हैं। प्रामाणिक शास्त्रों में बारह रसों के नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं—(१) रौद्र (क्रोध), (२) अद्भुत (आश्चर्य), (३) शृंगार (दाम्पत्य प्रेम), (४) हास्य (प्रहसन), (५) वीर (शौर्य), (६) दया (करुणा), (७) दास्य (दासता), (८) सख्य (मैत्रीभाव), (९) भयानक (भय), (१०) बीभत्स (आघात), (११) शान्त (उदासीनता) तथा (१२) वात्सल्य (माता पिता का स्नेह)।

इन समस्त रसों का समग्र सार स्नेह या प्रेम है। मूल रूप से प्रेम के ऐसे लक्षण उपासना, सेवा, मैत्री, वात्सल्य तथा दाम्पत्य प्रेम के रूप में प्रकट होते हैं। जब ये पाँच अनुपस्थित होते हैं, तो प्रेम अप्रत्यक्ष रूप में क्रोध, आश्चर्य, हास्य, वीरता, भय, बीभत्सता आदि में प्रकट होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है, तो यह शृंगार रस हुआ। किन्तु यदि ऐसे प्रेम में बाधा पहुँचती है तो आश्चर्य, क्रोध, आघात या भय तक उत्पन्न हो सकता है। कभी-कभी दो व्यक्तियों के प्रेम सम्बन्धों का अन्त नृशंस हत्या में होता है। ऐसे रसों का प्रदर्शन मनुष्य तथा मनुष्य के मध्य और पशु तथा पशु के बीच प्रदर्शित होता है। इस जगत में रस का ऐसा आदान-प्रदान न तो मनुष्य तथा पशु के बीच हो पाता है, न ही मनुष्य तथा अन्य किसी योनि के साथ। ऐसे रस का आदान-प्रदान तो एक जैसी योनि के जीवों में ही होता है। किन्तु जहाँ तक आत्माओं का प्रश्न है, वे गुणात्मक रूप से परमेश्वर के समरूप हैं। इसीलिए प्रारम्भ में रसों का आदान-प्रदान आध्यात्मिक जीव (जीवात्मा) तथा आध्यात्मिक परम पूर्ण, भगवान् के साथ होता था। यह आध्यात्मिक आदान-प्रदान या रस, आध्यात्मिक जगत में जीवों तथा परमेश्वर के बीच, पूरी तरह पाया जाता है।

इसीलिए श्रुति मन्त्रों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को “समस्त रसों का निर्झर स्रोत” कहा गया है। जब जीव परमेश्वर की संगति करता है और उनके साथ अपने स्वाभाविक रस का आदान-प्रदान करता है, तो वह सचमुच सुखी होता है।

ये श्रुति मन्त्र बताते हैं कि प्रत्येक जीव का एक स्वाभाविक स्वरूप होता है, जिसमें भगवान् के साथ एक विशिष्ट प्रकार के रस का आदान-प्रदान किया जाता है। केवल मुक्त अवस्था में इस मौलिक रस का पूर्ण रूप से अनुभव हो पाता है। भौतिक जगत में रस का अनुभव विकृत रूप में होता है जो अस्थायी होता है। इस प्रकार भौतिक जगत में रस का प्रदर्शन रौद्र (क्रोध) आदि-आदि भौतिक रूप में होता है।

अतएव जो व्यक्ति कार्यकलापों के मूल तत्त्व रूप इन विभिन्न रसों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वही मूल रसों के छद्म स्वरूपों को भौतिक जगत में प्रतिबिम्बित होते समझ सकता है। विद्वान् अध्येता वास्तविक रस का उसके आध्यात्मिक रूप में आस्वादन करना चाहता है। प्रारम्भ में वह परमेश्वर से एकाकार होना चाहता है। इस प्रकार अल्पज्ञ अध्यात्मवादी, विभिन्न रसों को जाने बिना, पूर्ण आत्मा से एकाकार होने के बोध से ऊपर नहीं जा पाते।

इस श्लोक में यह निश्चित रूप से कहा गया है कि वह आध्यात्मिक रस, जिसका आस्वादन मुक्त अवस्था में भी किया जाता है, श्रीमद्भागवत के साहित्य में अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि यह वैदिक ज्ञान का पक्व फल है। इस दिव्य साहित्य का विनीत भाव से श्रवण करने पर मनुष्य मनवांछित पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकता है। किन्तु मनुष्य को इस बात में अत्यन्त सावधानी बरतनी होगी कि इस सन्देश का श्रवण सही स्रोत से किया जाए। श्रीमद्भागवत को पूर्णतया उपयुक्त स्रोत से ही प्राप्त किया गया है। इसे वैकुण्ठलोक से ले आने वाले नारद मुनि हैं, जिन्होंने इसे अपने शिष्य श्री व्यासदेव को प्रदान किया। श्री व्यासदेव ने इस संदेश को अपने पुत्र शुकदेव गोस्वामी को प्रदान किया और फिर उन्होंने इसे महाराज परीक्षित को उनकी मृत्यु से केवल सात दिन पूर्व प्रदान किया। श्रील शुकदेव गोस्वामी अपने जन्म से ही मुक्त आत्मा थे। यहाँ तक कि वे अपनी माता के गर्भ में ही मुक्त थे और जन्म के पश्चात् उन्हें किसी प्रकार की आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण नहीं करनी पड़ी। जन्म के समय कोई भी व्यक्ति न तो लौकिक दृष्टि से, न ही आध्यात्मिक दृष्टि से कुशल होता है। किन्तु पूर्ण रूप से मुक्त आत्मा होने के कारण, श्री शुकदेव गोस्वामी को आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए किसी प्रकार की विकास विधि का अनुसरण नहीं करना पड़ा।

अपितु तीनों गुणों से परे पूर्ण रूप से मुक्त पद पर स्थित रह कर भी, वे उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के इस दिव्य रस के प्रति आकर्षित हुए, जिनकी अर्चना मुक्त जीवों द्वारा वैदिक मन्त्रों से की जाती है। परमेश्वर की लीलाएँ मुक्त जीवों को, संसारी लोगों की अपेक्षा, अधिक आकर्षक लगती हैं। भगवान् किसी भी दृष्टिकोण से निराकार नहीं हैं, क्योंकि दिव्य रस की निष्पत्ति केवल व्यक्ति के साथ ही सम्भव है।

श्रीमद्भागवत में भगवान् की दिव्य लीलाओं का वर्णन है और श्रील शुकदेव गोस्वामी ने क्रमबद्ध रूप में इनका वर्णन किया है। इस प्रकार से विषय-वस्तु सभी वर्गों के मनुष्यों को भाने वाली है, चाहे वे मुक्तिकामी हों या परब्रह्म के साथ तादात्म्य की इच्छा करने वाले हों।

संस्कृत में शुक शब्द का अर्थ तोता भी होता है। जब कोई पका फल ऐसे पक्षियों की लाल चोंच से काट दिया जाता है, तो उसकी मिठास बढ़ जाती है। वैदिक फल जो ज्ञान में पूर्ण विकसित तथा पक्व है, वह श्रील शुकदेव गोस्वामी के होठों से निकला है, जिनकी तुलना तोते से की गई है, इसलिए नहीं कि उन्होंने अपने विद्वान पिता से जिस रूप में सुना था उसी रूप में सुना दिया, अपितु अपनी उस क्षमता के कारण जिसके बल पर उन्होंने इस कृति को सभी वर्गों को भाने वाले रूप में प्रस्तुत किया।

श्रील शुकदेव गोस्वामी के होठों से कथावस्तु इस प्रकार निस्सृत हुई है कि जो भी निष्ठावान श्रोता विनीत भाव से सुनता है, वह तत्काल इसके दिव्य रस का आस्वादन करता है, जो भौतिक जगत के विकृत रसों से भिन्न है। यह पक्व फल सर्वोच्च कृष्णलोक से एकाएक नहीं आ गिरा। प्रत्युत यह गुरु-शिष्य परम्परा की शृंखला से होता हुआ, सावधानी पूर्वक बिना किसी परिवर्तन या अवरोध के नीचे तक आया है। ऐसे मूर्ख लोग जो दिव्य गुरु-शिष्य परम्परा से सम्बद्ध नहीं हैं, वे रास नृत्य के सर्वोच्च दिव्य रस को, उन शुकदेव गोस्वामी के चरणचिह्नों का अनुगमन किए बिना, समझने का प्रयत्न करके भयंकर भूल करते हैं, जिन्होंने इस फल को दिव्य अनुभूति की अवस्थानुसार अत्यन्त सावधानी से प्रस्तुत किया है। मनुष्य को चाहिए कि शुकदेव गोस्वामी जैसे महापुरुषों को ध्यान में रखकर *श्रीमद्भागवत* की स्थिति को जानें, जिन्होंने विषय का प्रतिपादन

बड़ी सावधानी से किया है। *भागवत* की यह शिष्य-परम्परा बताती है कि भविष्य में भी *श्रीमद्भागवत* को ऐसे व्यक्ति से समझा जाय, जो श्रील शुकदेव गोस्वामी का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता हो। ऐसा व्यावसायिक व्यक्ति जो अवैध रूप से *भागवत* सुना कर व्यापार चलाता है, वह शुकदेव गोस्वामी का सही प्रतिनिधित्व नहीं करता। ऐसे व्यक्ति का पेशा एकमात्र अपनी जीविका कमाना है। अतः ऐसे व्यवसायी व्यक्तियों के भाषण नहीं सुनने चाहिए। ऐसे व्यक्ति इस गम्भीर विषय को समझने की क्रमिक विधि का अभ्यास किये बिना, सीधा गुह्यतम अंशों को सुनाते हैं। वे सामान्य रूप से रास-नृत्य की कथावस्तु में गोता लगाने लगते हैं और मूर्ख किस्मके लोग इसका बुरा अर्थ लगाते हैं। कुछ लोग इसे अनैतिक बताते हैं और अन्य लोग अपनी मूर्खतापूर्ण व्याख्याओं के द्वारा इस पर पर्दा डालने का प्रयास करते हैं। उनमें श्रील शुकदेव गोस्वामी के चरणचिह्नों पर चलने की लेशमात्र इच्छा नहीं रहती।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि *रस* के गम्भीर छात्र को श्रील शुकदेव गोस्वामी से चली आने वाली शिष्य-परम्परा से *भागवत* का सन्देश प्राप्त करना चाहिए, जिन्होंने *भागवत* का वर्णन दिव्य विज्ञान के विषय में अल्पज्ञानी उन संसारी लोगों की तुष्टि के लिए किसी मनमाने ढंग से नहीं, अपितु शुरु से सुनियोजित ढंग से प्रारम्भ किया है। *श्रीमद्भागवत* को इतनी सावधानी से प्रस्तुत किया गया है कि निष्ठावान तथा गम्भीर व्यक्ति तुरन्त वैदिक ज्ञान के इस पक्व फल का आनन्द, शुकदेव गोस्वामी या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि के मुख से निस्सृत अमृत रस का पान करके, उठा सकता है।

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ।

सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

नैमिषे—नैमिषारण्य नामक जंगल में; अनिमिष-क्षेत्रे—विष्णु को (जो पलक नहीं मारते) विशेष रूप से प्रिय स्थल में; ऋषयः—ऋषिगण; शौनक-आदयः—शौनक आदि; सत्रम्—यज्ञ; स्वर्गाय—स्वर्ग में जिनकी महिमा का गायन होता है ऐसे भगवान् के लिए; लोकाय—तथा भक्तों के लिए जो सदैव भगवान् के सम्पर्क में रहते हैं; सहस्र—एक हजार; समम्—वर्ष; आसत—सम्पन्न किया।

एक बार नैमिषारण्य के वन में एक पवित्र स्थल पर शौनक आदि महान ऋषिगण भगवान् तथा उनके भक्तों को प्रसन्न करने के लिए एक हजार वर्षों तक चलने वाले यज्ञ को सम्पन्न करने के उद्देश्य से एकत्र हुए।

तात्पर्य : पिछले तीन श्लोक *श्रीमद्भागवत* के उपोद्घात के रूप में थे। अब इस महान ग्रंथ का मुख्य विषय प्रस्तुत किया जा रहा है। *श्रीमद्भागवत* प्रथम बार श्रील शुकदेव गोस्वामी द्वारा सुनाये जाने के बाद, अब दूसरी बार नैमिषारण्य में सुनाया जा रहा था।

वायवीय तन्त्र में कहा गया है कि इस विशिष्ट ब्रह्माण्ड के शिल्पी ब्रह्मा ने एक ऐसे विराट चक्र की कल्पना की, जो ब्रह्माण्ड को चारों ओर से घेर सके। इस विराट चक्र की धुरी एक विशिष्ट स्थान पर स्थित की गई, जिसे नैमिषारण्य कहते हैं। इसी प्रकार से नैमिषारण्य के वन का एक अन्य प्रसंग *वराह पुराण* में आता है, जिसमें यह कहा गया है कि इस स्थान पर यज्ञ करने से आसुरी लोगों की शक्ति घटती है। अतएव ब्राह्मण लोग ऐसे यज्ञों को नैमिषारण्य में करना श्रेष्ठ समझते हैं।

भगवान् विष्णु के भक्त उनकी प्रसन्नता के लिए सभी प्रकार के यज्ञ करते हैं। भक्तगण निरन्तर भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं, जबकि पतित जीव भौतिक सुखों में आसक्त रहते हैं। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि भौतिक जगत में भगवान् विष्णु की इच्छा के अतिरिक्त जिस किसी कारण से कोई भी कर्म किया जाता है, कर्ता के लिए वह और अधिक बन्धन का कारण होता है। इसीलिए ऐसा आदेश दिया गया है कि सारे कर्म विष्णु तथा उनके भक्तों की प्रसन्नता के लिए यज्ञरूप में सम्पन्न किये जाँय। इससे प्रत्येक व्यक्ति को शान्ति तथा सम्पन्नता प्राप्त होगी।

बड़े-बड़े ऋषि-मुनि जनसामान्य का कल्याण करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। फलस्वरूप शौनक आदि ऋषि एक महान तथा निरन्तर चलने वाले यज्ञ-अनुष्ठान को सम्पन्न करने के उद्देश्य से इस नैमिषारण्य नामक पवित्र स्थान पर एकत्र हुए। भुलकड़ लोग शान्ति तथा सम्पन्नता पाने का सही मार्ग नहीं जानते, किन्तु साधु पुरुष इसे भलीभाँति जानते हैं। फलस्वरूप वे समस्त लोगों के कल्याण के लिए ऐसा कर्म करना चाहते हैं, जिससे विश्व में शान्ति आ सके। वे

समस्त जीवों के शुभचिन्तक मित्र हैं और वे व्यक्तिगत कष्ट झेलकर भी समस्त लोगों के कल्याण के लिए भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। भगवान् विष्णु एक विशाल वृक्ष के तुल्य हैं तथा देवता, मनुष्य, सिद्ध, चारण, विद्याधर एवं अन्य सारे जीवों सहित बाकी सब इस वृक्ष की शाखाएँ, उपशाखाएँ तथा पत्तियाँ जैसे हैं। यदि वृक्ष की जड़ को पानी से सींचा जाय, तो वृक्ष के सारे भागों का स्वयमेव पोषण होता जाता है। केवल उन शाखाओं तथा पत्तों का पोषण नहीं होता, जो वृक्ष से अलग हो गए हैं। वे निरन्तर सींचते रहने पर भी धीरे-धीरे सूख जाते हैं। इसी प्रकार जब यह मानव समाज अलग हुए शाखाओं तथा पत्तियों की तरह भगवान् से रहित हो जाता है, तो उसकी सिंचाई (पोषण) नहीं की जा सकती और जो ऐसा करता भी है, वह अपनी शक्ति तथा साधनों का अपव्यय करता है।

आधुनिक भौतिकतावादी समाज परमेश्वर से अपना सम्बन्ध तोड़े हुए है। उसकी सारी योजनाएँ जो नास्तिक नेताओं द्वारा तैयार की जाती हैं, वे पग-पग पर विफल होंगी यह निश्चित है। फिर भी वे जगने का नाम नहीं लेते।

इस युग में जागृति लाने की निर्दिष्ट विधि भगवान् के पवित्र नामों का सामूहिक कीर्तन है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसकी विधियों तथा साधनों को अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। बुद्धिमान लोग उनके उपदेशों का लाभ वास्तविक शान्ति तथा सम्पन्नता लाने के लिए उठा सकते हैं। *श्रीमद्भागवत* भी उसी उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। आगे चलकर इसकी विशद व्याख्या की जायेगी।

त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ।

सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ते—वे (मुनिगण) ; एकदा—एक दिन; तु—लेकिन; मुनयः—मुनिगण; प्रातः—प्रातःकाल; हुत—जलाकर; हुत-अग्नयः—यज्ञ की अग्नि; सत्-कृतम्—आदर समेत; सूतम्—श्री सूत गोस्वामी को; आसीनम्—बैठा कर; पप्रच्छुः—पूछा; इदम्—इस पर (निम्नलिखित); आदरात्—आदरपूर्वक।

एक दिन यज्ञाग्नि जलाकर अपने प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त होकर तथा श्रील सूत गोस्वामी को आदरपूर्वक आसन अर्पण करके ऋषियों ने सम्मानपूर्वक निम्नलिखित विषयों पर प्रश्न पूछे।

तात्पर्य : आध्यात्मिक सेवाओं के लिए प्रातःकाल सर्वश्रेष्ठ समय होता है। ऋषियों ने *भागवत* के वक्ता के लिए ससम्मान एक ऊँचा आसन अर्पण किया, जिसे व्यासासन कहते हैं। श्री व्यासदेव समस्त मनुष्यों के मूल आध्यात्मिक उपदेशक हैं। अन्य सारे उपदेशक उनके प्रतिनिधि माने जाते हैं। प्रतिनिधि वही है जो श्री व्यासदेव के दृष्टिकोण को सही-सही प्रस्तुत कर सके। श्री व्यासदेव ने *भागवत* का सन्देश श्रील शुकदेव गोस्वामी को प्रदान किया और श्री सूत गोस्वामी ने उनसे (श्री शुकदेव गोस्वामी से) इसे सुना। श्री व्यासदेव के सारे प्रामाणिक प्रतिनिधियों को शिष्य-परम्परा में गोस्वामी समझना चाहिए। ये गोस्वामी अपनी सारी इन्द्रियों को वश में करके पूर्ववर्ती आचार्यों के पथ में दृढ़ रहते हैं। वे *भागवत* पर मनमाने व्याख्यान नहीं देते, अपितु अपने उन पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुगमन करते हुए अत्यन्त सावधानी से सेवा करते हैं, जिन्होंने उन तक दिव्य संदेश को यथारूप पहुँचाया।

भागवत के श्रोतागण वक्ता से अर्थ स्पष्ट करने के लिए प्रश्न पूछ सकते हैं, किन्तु चुनौती की भावना से ऐसा नहीं करना चाहिए। श्रोता को चाहिए कि वक्ता तथा विषयवस्तु के लिए अत्यन्त सम्मान के साथ प्रश्न पूछे। *भगवद्गीता* में भी इसी विधि का निर्देश किया गया है। मनुष्य को उपयुक्त स्रोतों से विनयपूर्वक श्रवण करके दिव्य विषय सीखना चाहिए। इसीलिए इन मुनियों ने वक्ता सूत गोस्वामी को अत्यन्त सम्मानपूर्वक सम्बोधित किया।

ऋषय ऊचुः

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ।

आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः—ऋषियों ने; ऊचुः—कहा; त्वया—आपके द्वारा; खलु—निश्चय ही; पुराणानि—परिपूरक वेदों को जिनमें रोचक कथाएँ हैं; स-इतिहासानि—इतिहासों समेत; च—तथा; अनघ—समस्त पापों से मुक्त; आख्यातानि—कहा गया;

अपि—यद्यपि; अधीतानि—सुपठित; धर्म-शास्त्राणि—प्रगतिशील जीवन के लिए सही निर्देश देने वाले शास्त्र ग्रन्थ;
यानि—ये सब; उत—व्याख्या की गई।

मुनियों ने कहा : हे पूज्य सूत गोस्वामी, आप समस्त प्रकार के पापों से पूर्ण रूप से मुक्त हैं। आप धार्मिक जीवन के लिए विख्यात समस्त शास्त्रों एवं पुराणों के साथ-साथ इतिहासों में निपुण हैं, क्योंकि आपने समुचित निर्देशन में उन्हें पढ़ा है और उनकी व्याख्या भी की है।

तात्पर्य : गोस्वामी या श्री व्यासदेव के प्रामाणिक प्रतिनिधि को समस्त पापों से मुक्त होना चाहिए। कलियुग के चार प्रमुख पाप हैं—(१) स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध, (२) पशु-वध, (३) मादक द्रव्य सेवन तथा (४) सभी प्रकार की द्यूत-क्रीड़ा। किसी गोस्वामी को व्यासासन पर बैठने का तभी साहस करना चाहिए, जब वह इन सभी पापों से मुक्त हो। जो उपर्युक्त पापों से रहित न हो और जो आचरण से निष्कलंक नहो, उसे व्यासासन पर न बैठाया जाय। उसे न केवल इन सभी पापों से मुक्त होना चाहिए, अपितु समस्त शास्त्रों में या वेदों में पारंगत होना चाहिए। पुराण भी वेदों के ही अंग हैं एवं महाभारत या रामायण जैसे इतिहास भी वेदों के ही अंग हैं। आचार्य अथवा गोस्वामी को इन ग्रन्थों से पूर्ण रूप से अवगत होना चाहिए। उनको पढ़ने की अपेक्षा उनका श्रवण तथा उनकी व्याख्या (कीर्तन) अधिक महत्त्वपूर्ण है। केवल श्रवण तथा व्याख्या द्वारा शास्त्रों के ज्ञान को आत्मसात् किया जा सकता है। श्रवण का अर्थ है सुनना तथा कीर्तन का अर्थ है समझाना या कहना। श्रवण तथा कीर्तन ये दोनों विधियाँ प्रगतिशील आध्यात्मिक जीवन के लिए अति आवश्यक हैं। जिन लोगों ने उपयुक्त स्रोत से विनयपूर्वक श्रवण करके दिव्य ज्ञान को भलीभाँति समझ लिया है, वे ही इस विषय की समुचित व्याख्या कर सकते हैं।

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः ।

अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यानि—वह सब; वेद-विदाम्—वेदों के पंडित; श्रेष्ठः—ज्येष्ठतम, वयोवृद्ध; भगवान्—ईश्वर के अवतार; बादरायणः—व्यासदेव; अन्ये—अन्य; च—तथा; मुनयः—मुनिगण; सूत—हे सूत गोस्वामी; परावर-विदः—विद्वानों में जो भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान से परिचित होता है; विदुः—ज्ञाता ।

हे सूत गोस्वामी, आप ज्येष्ठतम विद्वान एवं वेदान्ती होने के कारण ईश्वर के अवतार व्यासदेव के ज्ञान से अवगत हैं और आप उन अन्य मुनियों को भी जानते हैं जो सभी प्रकार के भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान में निष्णात हैं ।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र या बादरायणी वेदान्त-सूत्र की स्वाभाविक टीका है। इसे स्वाभाविक कहा जाता है, क्योंकि व्यासदेव वेदान्त-सूत्र तथा समस्त वैदिक साहित्य के सार रूप इस श्रीमद्भागवत के ग्रन्थकार हैं। व्यासदेव के अतिरिक्त अन्य ऋषिगण यथा गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि तथा अष्टावक्र छह विभिन्न दार्शनिक प्रणालियों के ग्रन्थकार हुए हैं। आस्तिकता की पूर्ण व्याख्या वेदान्त-सूत्र में है, जबकि अन्य दार्शनिक चिन्तन प्रणालियों में समस्त कारणों के परम कारण के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। कोई व्यासासन पर तभी बैठ सकता है जब वह दर्शन की समस्त प्रणालियों से अवगत हो जिससे वह अन्य समस्त प्रणालियों के खण्डन में भागवत के आस्तिकतावाद को प्रस्तुत कर सके। श्रील सूत गोस्वामी उपयुक्त शिक्षक थे, इसीलिए नैमिषारण्य के मुनियों ने उन्हें व्यासासन पर बैठाया। श्रील व्यासदेव को यहाँ पर भगवान् कहा गया है, क्योंकि वे प्रामाणिक 'शक्त्यावेश' अवतार हैं।

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ।

ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

वेत्थ—पूर्ण रूप से निष्णात; त्वम्—आप; सौम्य—शुद्ध तथा सरल व्यक्ति; तत्—वह; सर्वम्—समस्त; तत्त्वतः—वास्तव में; तत्—उनका; अनुग्रहात्—अनुग्रह से; ब्रूयुः—कहेंगे; स्निग्धस्य—विनीत; शिष्यस्य—शिष्य का; गुरवः—गुरुजन; गुह्यम्—गुप्त, रहस्य; अपि उत—से युक्त ।

इससे भी अधिक, चूँकि आप विनीत हैं, आपके गुरुओं ने एक सौम्य शिष्य जानकर आप पर सभी तरह से अनुग्रह किया है अतः आप हमें वह सब बतायें जिसे आपने उनसे वैज्ञानिक ढंग से सीखा है।

तात्पर्य : आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य गुरु को तुष्ट करने तथा उनकी शुभाशीष प्राप्त करने में है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु के विषय में अपने सुप्रसिद्ध आठ श्लोकों में इस प्रकार गाया है : “मैं अपने गुरु के चरणारविन्दों में नमस्कार करता हूँ। उनको तुष्ट करके ही कोई भगवान् को प्रसन्न कर सकता है और जब वे अप्रसन्न रहते हैं, तो आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में विघ्न ही विघ्न आते हैं।” अतः यह आवश्यक है कि शिष्य अपने प्रामाणिक गुरु के प्रति अत्यन्त आज्ञाकारी तथा विनीत रहे। श्रील सूत गोस्वामी शिष्य के इन सारे गुणों से ओतप्रोत थे, अतः उन पर विद्वान एवं स्वरूपसिद्ध आध्यात्मिक गुरुओं तथा श्रील व्यासदेव तथा अन्य गुरुओं की कृपा दृष्टि थी। नैमिषारण्य के मुनियों को पूर्ण विश्वास था कि श्रील सूत गोस्वामी प्रामाणिक व्यक्तित्व हैं, इसीलिए वे उनसे सुनने के लिए उत्सुक थे।

तत्र तत्राञ्जसायुष्मन् भवता यद्विनिश्चितम् ।
पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तत्रः शंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; तत्र—वहाँ; अञ्जसा—सहज; आयुष्मन्—दीर्घ जीवन का आशीर्वाद पाये; भवता—आपके द्वारा; यत्—जो कुछ; विनिश्चितम्—निश्चित किया; पुंसाम्—जनसामान्य के लिए; एकान्ततः—नितान्त; श्रेयः—परम कल्याण; तत्—उस; नः—हमको; शंसितुम्—समझाने के लिए; अर्हसि—योग्य हो।

अतएव, दीर्घायु की कृपा प्राप्त आप सरलता से समझ में आने वाली विधि से हमें समझाइये कि आपने जन साधारण के समग्र एवं परम कल्याण के लिए क्या निश्चय किया है?

तात्पर्य : भगवद्गीता में आचार्य की पूजा की संस्तुति की गई है। आचार्य तथा गोस्वामी निरन्तर जनसाधारण के कल्याण, विशेष रूप से उनके आध्यात्मिक कल्याण, के विचारों में लीन रहते हैं। आध्यात्मिक कल्याण होने पर भौतिक कल्याण स्वतः हो जाता है। अतएव आचार्यगण सामान्य जनता को आध्यात्मिक कल्याण के लिए उपदेश देते हैं। इस कलियुग या कलहप्रिय लौह-युग की अक्षमताओं को देखते हुए, मुनियों ने सूत गोस्वामी से प्रार्थना की कि वे सारे शास्त्रों का निचोड़ प्रस्तुत करें, क्योंकि इस युग के लोग सभी प्रकार से पतित हो गये हैं। अतः मुनियों ने

समग्र कल्याण की जिज्ञासा की। यही लोगों का परम कल्याण है। इस युग के लोगों की पतित अवस्था का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से हुआ है।

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

प्रायेण—प्रायः; अल्प—न्यून; आयुषः—आयु, जीवन अवधि; सभ्य—विद्वत्समाज का सदस्य; कलौ—कलियुग में; अस्मिन्—यहाँ पर; युगे—युग में; जनाः—लोग, जनता; मन्दाः—आलसी; सुमन्द-मतयः—पथभ्रष्ट; मन्द-भाग्याः—अभागे; हि—और तो और; उपद्रुताः—विचलित।

हे विद्वान, कलि के इस लौह-युग में लोगों की आयु न्यून है। वे झगड़ालू, आलसी, पथभ्रष्ट, अभागे होते हैं तथा साथ ही साथ सदैव विचलित रहते हैं।

तात्पर्य : भगवद्भक्त सामान्य जनों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए सदैव चिन्तित रहते हैं। जब नैमिषारण्य के मुनियों ने इस कलियुग के लोगों की अवस्था का विश्लेषण किया, तो उन्होंने देखा कि उनकी आयु कम होगी। कलियुग में आयु कम होने का कारण अपर्याप्त आहार नहीं, अपितु अनियमित आदतें हैं। आदतों को नियमित करके तथा सादा भोजन करके कोई भी व्यक्ति अपना स्वास्थ्य बनाये रख सकता है। अधिक भोजन करना, अधिक इन्द्रियतृप्ति, दूसरों की दया पर अत्यधिक आश्रित रहना एवं रहन-सहन के कृत्रिम मानक मनुष्य की प्राणशक्ति तक को चूस लेते हैं। फलस्वरूप जीवन की अवधि घट जाती है।

इस युग के लोग न केवल भौतिक दृष्टि से, अपितु आत्म-साक्षात्कार के मामले में भी अत्यन्त आलसी हैं। यह मनुष्य-जीवन विशेष रूप से आत्म-साक्षात्कार के लिए मिला है। अर्थात् मनुष्य को जानना चाहिए कि मैं क्या हूँ, संसार क्या है और परम सत्य क्या है। मनुष्य जीवन वह साधन है, जिससे जीव इस भौतिक जगत में कठिन जीवन-संघर्ष के कष्टों को मिटा सकता है और अपने सनातन घर, भगवद्धाम को लौट सकता है। किन्तु भ्रष्ट शिक्षा पद्धति के कारण लोगों में आत्म-साक्षात्कार की इच्छा ही नहीं उठती। यदि वे इसके विषय में जानते भी हैं, तो दुर्भाग्यवश वे पथभ्रष्ट शिक्षकों के शिकार बन जाते हैं।

इस युग में लोग न केवल विभिन्न राजनीतिक वर्गों तथा दलों के शिकार हैं, अपितु विभिन्न प्रकार के इन्द्रियतृप्ति करने वाले विपथनों से भी ग्रस्त हैं, जैसे कि सिनेमा, खेलकूद, जुआ, क्लब, संसारी पुस्तकालय, बुरी संगति, धूम्रपान, मदिरा-पान, छलावा, चोरी, मनमुटाव आदि-आदि। अनेकानेक व्यस्तताओं के कारण उनके मन सदैव विचलित एवं चिन्ताओं से ग्रस्त रहते हैं। इस युग में अनेक धूर्त लोग अपने-अपने धार्मिक पंथ खड़े कर देते हैं, जो किन्हीं शास्त्रों पर आधारित नहीं होते और प्रायः ऐसे लोग ही, जो इन्द्रियतृप्ति के व्यसनी हैं, ऐसी संस्थाओं के प्रति आकृष्ट होते रहते हैं। फलस्वरूप धर्म के नाम पर अनेक पापकर्म किये जाते हैं, जिसके कारण लोगों को न तो मानसिक शान्ति मिल पाती है, न स्वास्थ्य-लाभ हो पाता है। अब छात्र (ब्रह्मचारी) वर्ग का पालन नहीं किया जाता और गृहस्थ लोग गृहस्थाश्रम के विधि-विधानों का पालन नहीं करते। फलस्वरूप, तथाकथित वानप्रस्थ तथा संन्यासी जो ऐसे गृहस्थाश्रमों से आते हैं, अपने कठोर पथ से आसानी से विचलित हो जाते हैं। कलियुग में सारा परिवेश श्रद्धाविहीनता से पूर्ण है। लोग अब आध्यात्मिक मूल्यों में रुचि नहीं दिखाते। अब तो भौतिक इन्द्रियतृप्ति ही सभ्यता का मानदण्ड बनी हुई है। ऐसी भौतिक सभ्यता को बनाये रखने के लिए मनुष्य ने जटिल किस्मके राष्ट्रों तथा समुदायों का निर्माण किया है और विभिन्न गुटों में निरन्तर प्रत्यक्ष तथा शीत युद्ध की आशंका बनी रहती है। अतएव आज के मानव समाज के विकृत मानदण्डों के कारण आध्यात्मिक स्तर को उठा पाना अत्यन्त कठिन हो गया है। नैमिषारण्य के ऋषिमुनि पतितात्माओं को मुक्त करने के लिए उत्सुक हैं, अतएव वे श्रील सूत गोस्वामी से उपचार पूछ रहे हैं।

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ।

अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।

ब्रूहि भद्राय भूतानां येनात्मा सुप्रसीदति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

भूरीणि—बहुमुखी; भूरि—अनेक; कर्माणि—कर्म, कर्तव्य; श्रोतव्यानि—सीखने योग्य; विभागशः—विषयानुसार; अतः—अतएव; साधो—हे साधु; अत्र—यहाँ पर; यत्—जो कुछ; सारम्—निष्कर्ष; समुद्धृत्य—चुनाव करके; मनीषया—अपने ज्ञान के अनुसार सर्वश्रेष्ठ; ब्रूहि—कृपा करके बताएँ; भद्राय—कल्याण के लिए; भूतानाम्—जीवों के; येन—जिससे; आत्मा—आत्मा; सुप्रसीदति—पूर्ण रूप से प्रसन्न हो जाती है।

शास्त्रों के अनेक विभाग हैं और उन सबमें अनेक नियमित कर्मों का उल्लेख है, जिनके विभिन्न प्रभागों को वर्षों तक अध्ययन करके ही सीखा जा सकता है। अतः हे साधु, कृपया आप इन समस्त शास्त्रों का सार चुनकर समस्त जीवों के कल्याण हेतु समझायें, जिससे उस उपदेश से उनके हृदय पूरी तरह तुष्ट हो जायँ।

तात्पर्य : आत्मा अथवा स्व को पदार्थ तथा भौतिक तत्त्वों से पृथक् माना जाता है। इसका स्वरूप स्वभावतः आध्यात्मिक है, अतः यह किसी भी परिणाम के भौतिक आयोजनों से तुष्ट नहीं होता। सम्पूर्ण शास्त्र तथा आध्यात्मिक उपदेश इसी आत्मा की तुष्टि के निमित्त हैं। विभिन्न कालों तथा विभिन्न स्थानों में नाना-विध जीवों के लिए अनेक प्रकार के उपायों की संस्तुति की जाती है। फलस्वरूप, प्रामाणिक शास्त्रों की संख्या अनगिनत है। इन शास्त्रों में विभिन्न विधियों तथा नियमित कर्मों का विधान है। इस कलिकाल में सामान्य जनता की पतित अवस्था को ध्यान में रखते हुए, नैमिषारण्य के मुनियों ने श्री सूत गोस्वामी से अनुरोध किया कि वे इन समस्त शास्त्रों का सार कह सुनायें, क्योंकि इस युग में पतितात्माओं के लिए वर्णाश्रम पद्धति में इन विविध शास्त्रों के उपदेशों को पढ़ना तथा समझ पाना सम्भव नहीं है।

मनुष्यों को आध्यात्मिक स्तर तक उठाने के लिए वर्णाश्रम वाले समाज को सर्वोत्कृष्ट संस्था माना जाता था, किन्तु कलियुग के कारण इन संस्थाओं के विधि-विधानों को पूरा कर पाना सम्भव नहीं रह गया है। न ही जन-साधारण के लिए वर्णाश्रम संस्था द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार अपने-अपने परिवारों से सम्बन्ध-विच्छेद कर पाना सम्भव है। सारा परिवेश विरोध से व्याप्त है। इस पर विचार करते हुए यह देखा जा सकता है कि इस युग में सामान्य जनों का आध्यात्मिक उत्थान अत्यन्त कठिन है। जिस कारण से मुनियों ने इस विषय को श्री सूत गोस्वामी के समक्ष रखा, उसकी व्याख्या अगले श्लोकों में की गई है।

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः ।

देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सूत—हे सूत गोस्वामी; जानासि—आप जानते हो; भद्रम् ते—आपका कल्याण हो; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—शुद्ध भक्तों का; पतिः—रक्षक; देवक्याम्—देवकी के गर्भ में; वसुदेवस्य—वसुदेव से; जातः—उत्पन्न; यस्य—जिसके उद्देश्य से; चिकीर्षया—सम्पन्न करने हेतु।

हे सूत गोस्वामी, आपका कल्याण हो। आप जानते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् देवकी के गर्भ से वसुदेव के पुत्र के रूप में किस प्रयोजन से प्रकट हुए।

तात्पर्य : भगवान् का अर्थ है सर्वशक्तिमान ईश्वर जो समस्त ऐश्वर्यों, शक्ति, यश, सौंदर्य, ज्ञान तथा तपस्या के नियंता हैं। वे अपने शुद्ध भक्तों के रक्षक हैं। यद्यपि ईश्वर सबों पर समभाव रखने वाले हैं, तो भी वे अपने भक्तों पर विशेष कृपालु रहते हैं। सत् का अर्थ है परम सत्य। जो लोग परम सत्य के सेवक या दास हैं, वे सात्वत कहलाते हैं। ऐसे शुद्ध भक्तों की रक्षा करने वाले भगवान् सात्वतों के रक्षक कहलाते हैं। भद्रं ते अर्थात् 'आपका कल्याण हो' से मुनियों द्वारा वक्ता से परम सत्य के विषय में जानने की उत्सुकता का द्योतक है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव की पत्नी देवकी से प्रकट हुए। वसुदेव आध्यात्मिक पद के प्रतीक हैं जिसमें परमेश्वर का प्राकट्य होता है।

तत्रः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ।

यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तत्—वे; नः—हमको; शुश्रूषमाणानाम्—जो प्रयत्नशील हैं; अर्हसि—करना चाहिए; अङ्ग—हे सूत गोस्वामी; अनुवर्णितुम्—पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुगमन करते हुए व्याख्या करने के लिए; यस्य—जिसका; अवतारः—अवतार; भूतानाम्—जीवों के; क्षेमाय—कल्याण के लिए; च—तथा; भवाय—उन्नति के लिए; च—तथा।

हे सूत गोस्वामी, हम भगवान् तथा उनके अवतारों के विषय में जानने के लिए उत्सुक हैं। कृपया हमें पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिये गये उपदेशों को बताइये, क्योंकि उनके वाचन श्रवण तथा कहने सुनने दोनों से ही मनुष्य का उत्कर्ष होता है।

तात्पर्य : यहाँ पर परम सत्य के दिव्य सन्देश के श्रवण हेतु आवश्यक शर्तें प्रस्तुत की गई हैं। पहली शर्त यह है कि श्रोता को अत्यंत निष्ठावान तथा सुनने के लिए उत्सुक होना चाहिए। दूसरी शर्त यह है कि वक्ता मान्य आचार्यों की शिष्य-परम्परा में से हो। जो लोग भौतिकता में लिप्त

रहते हैं, वे परमेश्वर के दिव्य-सन्देश को नहीं समझ पाते। प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में मनुष्य धीरे-धीरे शुद्ध होता जाता है। अतः उसे शिष्य-परम्परा में होना चाहिए और विनीत भाव से श्रवण करने की कला सीखनी चाहिए। सूत गोस्वामी तथा नैमिषारण्य के ऋषि-मुनि इन शर्तों को पूरा करते हैं, क्योंकि श्रील सूत गोस्वामी श्रील व्यासेदव की परम्परा के हैं और नैमिषारण्य के ऋषि-मुनि निष्ठावान जीव हैं, जो सत्य जानने के लिए लालायित हैं। अतः भगवान् श्रीकृष्ण के अलौकिक कार्यकलाप, उनका अवतार, उनका जन्म, आविर्भाव या तिरोधान, उनके स्वरूप, उनके नाम इत्यादि उन लोगों के जानने योग्य हैं, जो समस्त शर्तों को पूरा करते हैं। ऐसे उपदेश अध्यात्म के पथपर अग्रसर सभी मनुष्यों के सहायक होते हैं।

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।

ततः सद्यो विमुच्येत यद्विभेति स्वयं भयम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

आपन्नः—फँसे हुए; संसृतिम्—जन्म-मृत्यु के चक्कर में; घोराम्—अत्यन्त उलझे; यत्—जो; नाम—परम नाम; विवशः—अनजाने में; गृणन्—उच्चारण करते हुए; ततः—उससे; सद्यः—तुरन्त; विमुच्येत—मुक्त हो जाता है; यत्—जो; विभेति—डरता है; स्वयम्—स्वयं; भयम्—साक्षात् भय।

जन्म तथा मृत्यु के जाल में उलझे हुए जीव, यदि अनजाने में भी कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं, तो तुरन्त मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि साक्षात् भय भी इससे (नाम से) भयभीत रहता है।

तात्पर्य : वासुदेव अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण सभी के परम नियन्ता हैं। इस सृष्टि में कोई ऐसा नहीं है जो सर्वशक्तिमान के क्रोध से भयभीत न हो। रावण, हिरण्यकशिपु, कंस जैसे विकट असुर तथा ऐसे ही अन्य शक्तिशाली जीव भगवान् द्वारा मार डाले गये। पराक्रमी वासुदेव ने अपनी सारी निजी शक्तियाँ अपने नाम को प्रदान कर रखी हैं। प्रत्येक वस्तु उनसे सम्बन्धित है और प्रत्येक वस्तु की अपनी पहचान उनमें ही निहित है। यहाँ पर यह कहा गया है कि कृष्ण के नाम से साक्षात् भय तक भयभीत रहता है। यह इस बात का सूचक है कि कृष्ण का नाम भगवान् कृष्ण से अभिन्न है। अतः कृष्ण का नाम स्वयं कृष्ण के ही समान शक्तिमान है। उनमें तनिक भी

अन्तर नहीं है। अतः बड़े से बड़े संकट की स्थिति में भी भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र नाम का लाभ उठाया जा सकता है। कृष्ण के दिव्य नाम को, चाहे अनजाने में या बाध्य होकर, उच्चरित करने पर जन्म तथा मृत्यु की झंझट से उबरा जा सकता है।

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ।

सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; पाद—चरणकमल; संश्रयाः—शरणागत; सूत—हे सूत गोस्वामी; मुनयः—बड़े-बड़े मुनिगण; प्रशमायनाः—परमेश्वर की भक्ति में लीन; सद्यः—तुरन्त; पुनन्ति—पवित्र हो जाते हैं; उपस्पृष्टाः—केवल संगति से; स्वर्धुनी—पवित्र गंगा का; आपः—जल; अनुसेवया—उपयोग में लाने से।

हे सूत गोस्वामी, जिन महान ऋषियों ने पूर्ण रूप से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली है, वे अपने सम्पर्क में आने वालों को तुरन्त पवित्र कर देते हैं, जबकि गंगा जल दीर्घकाल तक उपयोग करने के बाद ही पवित्र कर पाता है।

तात्पर्य : भगवान् के शुद्ध भक्त पवित्र गंगा जल से भी अधिक शक्तिमान होते हैं। मनुष्य गंगाजल के दीर्घकालीन प्रयोग से ही आध्यात्मिक लाभ पा सकता है। किन्तु भगवान् के शुद्ध भक्त की कृपा से मनुष्य तुरन्त ही पवित्र हो सकता है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि चाहे कोई जन्म से शूद्र हो या स्त्री या वैश्य हो वह भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर सकता है और इस तरह वह भगवद्धाम को वापस लौट सकता है। भगवान् के चरणकमलों में शरण ग्रहण करने का अर्थ है, शुद्ध भक्तों की शरण ग्रहण करना। जिन शुद्ध भक्तों का एकमात्र कार्य भगवान् की सेवा करना है, वे *प्रभुपाद* तथा *विष्णुपाद* कहलाते हैं जो ऐसे भक्तों के भगवान् के चरणकमलों के प्रतिनिधि होने का द्योतक है। अतः जो भी व्यक्ति शुद्ध भक्त को अपना गुरु मान कर उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, वह तुरन्त शुद्ध हो जाता है। भगवान् के ऐसे भक्त भगवान् के ही समान आदरणीय हैं, क्योंकि वे भगवान् की गुह्यतम सेवा में लगे रहते हैं और वे उन पतितात्माओं का इस भवसागर से उद्धार कराते हैं, जिन्हें भगवान् अपने धाम में वापस बुलाना चाहते हैं। शास्त्रों के अनुसार ऐसे शुद्ध भक्तों को तो उप-प्रभु कहा जाता है। शुद्ध भक्त का

निष्ठावान शिष्य अपने गुरु को भगवान् के तुल्य मानता है, किन्तु अपने आपको भगवान् के दासों का भी दास समझता है। यही शुद्ध भक्ति का मार्ग है।

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेऽयकर्मणः ।

शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; वा—बल्कि; भगवतः—भगवान् का; तस्य—उनका; पुण्य—पुण्यात्मा; श्लोक—ईड्य—स्तुतियों द्वारा पूजनीय; कर्मणः—कर्म; शुद्धि—कामः—समस्त पापों से उद्धार की इच्छा करने वाला; न—नहीं; शृणुयात्—सुनता है; यशः—यश; कलि—कलह के युग का; मल-अपहम्—शुद्धि करने वाला।

इस कलहप्रधान युग के पापों से उद्धार पाने का इच्छुक ऐसा कौन है, जो भगवान् के पुण्य यशों को सुनना नहीं चाहेगा ?

तात्पर्य : कलियुग अपने कलह प्रधान लक्षणों के कारण अत्यन्त निकृष्ट युग है। यह पापाचारों से इस प्रकार परिपूरित है कि थोड़ी सी नासमझी से बड़ी भारी लड़ाई हो जाती है। जो भगवद्भक्ति में लगे हैं, जिन्हें आत्म-श्लाघा की कोई इच्छा नहीं है और जो कर्मों के फल तथा शुष्क दार्शनिक ज्ञान से मुक्त हैं, वे ही इस जटिल युग के बन्धन से छूट सकते हैं। जनता के नेता शान्ति तथा मैत्री से रहने के लिए उत्सुक तो हैं, किन्तु उन्हें भगवान् की महिमा के श्रवण की सरल विधि के बारे में कोई जानकारी नहीं है। इसके विपरीत, ऐसे नेता भगवत्महिमा के प्रचार के विरोधी हैं। दूसरे शब्दों में, मूर्ख नेता भगवान् के अस्तित्व को ही नकारना चाहते हैं। धर्मनिरपेक्ष राज्य के नाम पर ऐसे नेता प्रति वर्ष नई-नई योजनाएँ बनाते हैं। किन्तु भगवान् की प्रकृति की दुर्लभ्य जटिलताओं के कारण, उन्नति की ये सारी योजनाएँ निरन्तर विफल होती रहती हैं। उनके पास यह देख पाने की दृष्टि ही नहीं है कि शान्ति तथा मैत्री के उनके सारे प्रयास विफल हो रहे हैं। लेकिन यहाँ पर इस अवरोध को पार करने के लिए संकेत मिलता है। यदि हम वास्तविक शान्ति चाहते हैं, तो हमें भगवान् कृष्ण को समझने का मार्ग खोल देना चाहिए और उनके महिमामय कार्यों के लिए उनका यशोगान करना चाहिए जैसा कि *श्रीमद्भागवत* के पृष्ठों में अंकित है।

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ।

ब्रूहि नः श्रद्धधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनके; कर्माणि—दिव्य कर्म; उदाराणि—उदार; परिगीतानि—प्रसारित; सूरिभिः—महात्माओं द्वारा; ब्रूहि—कृपया कहें; नः—हमसे; श्रद्धधानानाम्—आदरपूर्वक ग्रहण करने के लिए उद्यत; लीलया—लीलाओं से; दधतः—धारण किये हुए; कलाः—अवतार ।

उनके दिव्य कर्म अत्यन्त उदार तथा अनुग्रहपूर्ण हैं और नारद जैसे महान् विद्वान् मुनि उनका गायन करते हैं। अतः कृपया हमें उनके अपने विविध अवतारों में सम्पन्न साहसिक लीलाओं के विषय में बतायें, क्योंकि हम सुनने के लिए उत्सुक हैं।

तात्पर्य : भगवान् कभी भी निष्क्रिय नहीं होते, जैसाकि कुछ अल्पज्ञ लोग सूचित करते हैं। उनके कर्म उदार तथा भव्य हैं। उनकी सृष्टियाँ, चाहे भौतिक हों या आध्यात्मिक, समान रूप से आश्चर्यजनक हैं और समस्त विविधताओं से परिपूर्ण हैं। इनका गुणगान श्रील नारद, व्यास, वाल्मीकि, देवल, असित, मध्व, श्री चैतन्य, रामानुज, विष्णु-स्वामी, निम्बार्क, श्रीधर, विश्वनाथ, बलदेव, भक्तिविनोद, भक्तिसिद्धान्त सरस्वती तथा अन्य अनेक विद्वानों एवं स्वरूपसिद्ध आत्माओं द्वारा किया जाता है। भौतिक एवं आध्यात्मिक ये दोनों प्रकार की सृष्टियाँ ऐश्वर्य, सौंदर्य तथा ज्ञान से परिपूर्ण हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत अपने सच्चिदानन्द स्वरूप के कारण अधिक भव्य है। भौतिक सृष्टियाँ कुछ काल के लिए अध्यात्म जगत के विकृत प्रतिबिम्बों के रूप में प्रकट होती हैं और उनकी तुलना सिनेमा से की जा सकती है। वे उन अल्पज्ञ लोगों को आकृष्ट करती हैं, जो मिथ्या वस्तुओं द्वारा आकृष्ट होते हैं। ऐसे मूर्ख व्यक्तियों को वास्तविकता का कुछ ज्ञान नहीं रहता और वे मिथ्या भौतिक स्वरूप को ही सब कुछ मान बैठते हैं। किन्तु अधिक बुद्धिमान व्यक्ति, जिन्हें व्यास तथा नारद जैसे मुनियों का मार्गदर्शन प्राप्त है, जानते हैं कि भगवान् का शाश्वत राज्य अधिक सुखी, अधिक विशाल तथा आनन्द एवं ज्ञान से नित्य परिपूर्ण है। जो लोग भगवान् के कार्यकलापों तथा उनके दिव्य धाम से परिचित नहीं हैं, उन्हें वे अवतार ले करके अपनी लीलाओं के माध्यम से अवगत कराते हैं, जिनमें वे अपने दिव्य धाम में संगति के शाश्वत आनन्द को

प्रदर्शित करते हैं। ऐसे कार्यकलापों से भगवान् भौतिक जगत के बद्धजीवों को आकृष्ट कर लेते हैं। इन बद्धजीवों में से कुछ भौतिक इन्द्रियों के मिथ्या भोग में लिप्त रहते हैं और कुछ आध्यात्मिक जगत (वैकुण्ठ) के अपने वास्तविक जीवन को नकारते रहते हैं। ये अल्पज्ञ व्यक्ति कर्मी अर्थात् सकाम कर्म करने वाले तथा ज्ञानी अर्थात् शुष्क मनोधर्मी कहलाते हैं। किन्तु इन दो प्रकार के व्यक्तियों के भी ऊपर अध्यात्मवादी होता है, जो सात्वत या भक्त कहलाता है और जो न तो उग्र भौतिक कार्यकलापों में, न ही भौतिक चिन्तन में लीन रहता है। वह तो भगवान् की वास्तविक सेवा में तत्पर रहता है जिससे उसे सर्वोच्च आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है, जो कर्मियों तथा ज्ञानियों के लिए दुर्लभ है।

भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों के परम नियन्ता के रूप में भगवान् के असीम श्रेणियों के विविध अवतार होते हैं। ब्रह्मा, रुद्र, मनु, पृथु तथा व्यास जैसे अवतार तो उनके भौतिक गुणात्मक अवतार हैं, लेकिन राम, नृसिंह, वराह तथा वामन जैसे अवतार उनके दिव्य अवतार कहलाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण इन समस्त अवतारों के प्रधान स्रोत हैं। अतएव वे ही समस्त कारणों के कारण हैं।

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ।

लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतः; आख्याहि—वर्णन करें; हरेः—भगवान् के; धीमन्—हे बुद्धिमान्; अवतार—अवतार; कथाः—कथाएँ; शुभाः—शुभ, कल्याणप्रद; लीला—साहसिक कार्य; विदधतः—सम्पन्न; स्वैरम्—लीलाएँ; ईश्वरस्य—परम नियन्ता की; आत्म—निजी, अपनी; मायया—शक्तियों से।

हे बुद्धिमान् सूतजी, कृपा करके हमसे भगवान् के विविध अवतारों की दिव्य लीलाओं का वर्णन करें। परम नियन्ता भगवान् के ऐसे कल्याणप्रद साहसिक कार्य तथा उनकी लीलाएँ उनकी अन्तरंगा शक्तियों द्वारा सम्पन्न होते हैं।

तात्पर्य : भौतिक जगतों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वयं हजारों रूपों में अवतरित होते हैं और इन विविध दिव्य रूपों में वे जो-जो साहसिक कार्य करते

हैं, वे सभी कल्याणप्रद होते हैं। जो लोग ऐसे कार्यों के समय उपस्थित रहते हैं तथा जो ऐसे कार्यों की दिव्य गाथाओं को सुनते हैं, वे दोनों लाभान्वित होते हैं।

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ।

यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; तु—लेकिन; न—नहीं; वितृप्यामः—तृप्त हो जाएँगे; उत्तम-श्लोक—भगवान्, जिनका यशोगान दिव्य श्लोकों से किया जाता है; विक्रमे—साहसिक कार्य; यत्—जो; शृण्वताम्—निरन्तर सुनने से; रस—रस के; ज्ञानाम्—भिज्ञों को; स्वादु—स्वाद लेते हुए; स्वादु—सुस्वादु, स्वादिष्ट; पदे पदे—पग पग पर।

हम उन भगवान् की दिव्य लीलाओं को सुनते थकते नहीं, जिनका यशोगान स्तोत्रों तथा स्तुतियों से किया जाता है। उनके साथ दिव्य सम्बन्ध के लिए जिन्होंने अभिरुचि विकसित कर ली है, वे प्रतिक्षण उनकी लीलाओं के श्रवण का आस्वादन करते हैं।

तात्पर्य : लौकिक कहानियों, कल्पित कथाओं या इतिहास तथा भगवान् की दिव्य लीलाओं में महान अन्तर होता है। समग्र ब्रह्माण्ड के इतिहास भगवान् के अवतारों की लीलाओं से भरे हुए हैं। रामायण, महाभारत तथा पुराण विगत युगों के इतिहास हैं, जिनमें भगवान् के अवतारों की लीलाओं के अभिलेख हैं, अतः बारम्बार पढ़ने पर भी वे नये के नये लगते हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई चाहे तो भगवद्गीता या श्रीमद्भागवत का आजीवन बारम्बार पाठ करता रहे, फिर भी उसे उनमें ज्ञान का नवीन प्रकाश दिखेगा। लौकिक समाचार गतिहीन होते हैं, किन्तु दिव्य समाचार गतिशील होते हैं, जिस प्रकार कि आत्मा गतिशील है और पदार्थ गतिहीन है। जिन मनुष्यों ने दिव्य विषयों को समझने के लिए सुरुचि का विकास किया है, वे ऐसी कथाएँ सुनते कभी थकते नहीं। लौकिक कार्यकलापों से मनुष्य शीघ्र तृप्त हो जाता है, किन्तु दिव्य या भक्तिमय कार्यकलापों से कभी तृप्ति नहीं होती। उत्तमश्लोक उस साहित्य की ओर संकेत करता है, जो अज्ञानता के निमित्त नहीं है। लौकिक साहित्य तो तमोगुणी होता है, किन्तु आध्यात्मिक साहित्य सर्वथा भिन्न होता है। दिव्य साहित्य तमोगुण से परे होता है और इसे ज्यों-ज्यों और पढ़ा जाता है, त्यों-त्यों यह अधिक प्रकाशवान बनता जाता है तथा इस दिव्य विषय की अनुभूति और अधिक

होती जाती है। तथाकथित मुक्त व्यक्ति अहं ब्रह्मास्मि शब्दों को बारम्बार उच्चरित करते संतुष्ट नहीं होते। ब्रह्म की ऐसी कृत्रिम अनुभूति उबाऊ है, फलतः वे भी वास्तविक आनन्द उठाने के लिए श्रीमद्भागवत की कथाओं की ओर मुड़ते हैं। जो लोग इतने भाग्यशाली नहीं हैं, वे परार्थवाद और दुनियायी परोपकार की ओर मुड़ते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मायावाद दर्शन लौकिक है, जबकि भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत का दर्शन दिव्य है।

कृतवान् किल कर्माणि सह रामेण केशवः ।
अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपटमानुषः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कृतवान्—किये गये; किल—कौन-कौन से; कर्माणि—कार्य; सह—सहित; रामेण—बलराम; केशवः—श्रीकृष्ण ने; अतिमर्त्यानि—अलौकिक; भगवान्—भगवान्; गूढः—प्रच्छन्न; कपट—ऊपर से; मानुषः—मनुष्य।

भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम सहित मनुष्य की भाँति क्रीड़ाएँ कीं और इस प्रकार से प्रच्छन्न रह कर उन्होंने अनेक अलौकिक कृत्य किये।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण या भगवान् पर मानव-विकास तथा पशु-विकास के सिद्धान्त लागू नहीं होते। आजकल, विशेष रूप से भारत में, इस सिद्धान्त का बोलबाला है कि तपस्या तथा आत्म-संयम के बल पर मनुष्य ईश्वर बन जाता है। चूँकि भगवान् राम, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य महाप्रभु को प्रमाणभूत शास्त्रों में बताये गये संकेतों के आधार पर ऋषियों तथा मुनियों ने भगवान् के रूप में पहचाना था, अतएव अनेक धूर्त व्यक्तियों ने अपने खुद के अवतारों की सृष्टि करली है। अब तो भगवान् के अवतार का गढ़ा जाना, विशेष रूप से बंगाल में, सामान्य व्यापार बन चुका है। कोई भी लोकप्रिय व्यक्ति कुछ योग-शक्तियाँ दिखलाकर तथा बाजीगरी के कुछ करतब दिखलाकर, लोकप्रिय मत-प्रस्ताव द्वारा भगवान् का अवतार बन जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार के अवतार न थे। वे अपने आविर्भाव काल से ही वास्तविक रूप से भगवान् थे। वे अपनी तथाकथित माता के समक्ष चतुर्भुज विष्णु रूप में प्रकट हुए थे और फिर अपनी माता के अनुरोध पर बालक रूप में परिणत हो गये थे। वे तुरन्त ही अपनी इस माता को छोड़कर गोकुल में अपने एक और भक्त के यहाँ चले गये, जहाँ उन्हें नन्द महाराज तथा यशोदा माता ने

अपने पुत्र रूप में स्वीकार किया। इसी प्रकार श्री बलराम भी, जो भगवान् कृष्ण के पूरक हैं, श्री वसुदेव की अन्य पत्नी से उत्पन्न बालक समझे जाते हैं। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि उनका जन्म तथा उनके कर्म दिव्य हैं और जो भाग्यशाली व्यक्ति उनके जन्म तथा कर्म की दिव्य प्रकृति को जान लेता है, वह तुरन्त मुक्त होकर भगवद्धाम को जा सकता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के जन्म तथा कर्म की दिव्य प्रकृति का ज्ञान ही मुक्त होने के लिए पर्याप्त है। भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य प्रकृति का वर्णन नौ स्कंधों में हुआ है और दसवें स्कंध में उनकी विशिष्ट लीलाएँ दी गई हैं। इस ग्रन्थ को ज्यों-ज्यों कोई पढ़ता है, त्यों-त्यों यह सब ज्ञात होता जाता है। किन्तु यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि भगवान् ने माता की गोद में से ही अपनी अलौकिकता प्रदर्शित की और उनके सारे के सारे कार्यकलाप अतिमानवीय हैं (यथा सात वर्ष की आयु में गोवर्धन पर्वत को उठाना) और ये सारे कार्य उन्हें वास्तविक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सिद्ध करते हैं। इतने पर भी अपने योगावरण के कारण वे अपने तथाकथित माता-पिता तथा अन्य परिजनों द्वारा सदैव एक सामान्य मानव शिशु ही समझे जाते रहे। जब भी वे कोई अत्यन्त पराक्रमी कार्य करते, उनके माता-पिता उसे अन्य रूप में ग्रहण करते। इस प्रकार वे अपने पुत्र के प्रति अविचल प्रेम से सदा तुष्ट रहते। अतएव नैमिषारण्य के ऋषिगण उन्हें मनुष्यवत् बताते हैं, लेकिन वास्तव में वे परम शक्तिमान भगवान् हैं।

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम् ।

आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कलिम्—कलियुग (कलहप्रिय लौह युग) ; आगतम्—आया हुआ; आज्ञाय—जानकर; क्षेत्रे—भूभाग में; अस्मिन्—इस; वैष्णवे—विशेष रूप से भगवान् के भक्तों के लिए; वयम्—हम; आसीनाः—बैठे हुए; दीर्घ—दीर्घकालीन; सत्रेण—यज्ञ द्वारा; कथायाम्—शब्दों में; स-क्षणाः—अपने अवकाश के समय; हरेः—भगवान् के।

यह भलीभाँति जानकर कि कलियुग का प्रारम्भ हो चुका है, हम इस पवित्र स्थल में भगवान् का दिव्य सन्देश सुनने के लिए तथा इस प्रकार यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दीर्घसत्र में एकत्र हुए हैं।

तात्पर्य : सत्य युग, स्वर्णयुग अथवा रजत एवं ताम्रयुग अर्थात्, त्रेता या द्वापर युग की भाँति यह कलियुग आत्म-साक्षात्कार के लिए तनिक भी उपयुक्त नहीं है। सत्य युग में एक लाख वर्ष की उम्र वाले लोग आत्म-साक्षात्कार के लिए दीर्घकालीन ध्यान करने में समर्थ थे। तथा त्रेता युग में जब जीवन की अवधि दस हजार वर्ष की थी, तो महान यज्ञों के अनुष्ठान से आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया जाने लगा और द्वापर युग में जब जीवन-अवधि एक हजार वर्ष हो गई, तो भगवान् की पूजा द्वारा यह आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया जाने लगा। किन्तु इस कलियुग में अधिकतम जीवन-अवधि केवल एक सौ वर्ष की है और वह भी कठिनाइयों से पूर्ण है, अतः इसमें आत्म-साक्षात्कार के लिए जिस विधि की संस्तुति की गई है, वह है भगवान् के पवित्र नाम, यश तथा उनकी लीलाओं का श्रवण और कीर्तन करना। नैमिषारण्य के ऋषियों ने यह विधि ऐसे स्थान में प्रारम्भ की जो भगवद्भक्तों के लिए ही था। उन्होंने एक हजार वर्ष की दीर्घ अवधि तक की भगवान् की लीलाएँ सुनने के लिए अपने आप को तैयार किया था। इन ऋषियों के उदाहरण से हमें यह सीखना चाहिए कि *भागवत* का नियमित श्रवण तथा कीर्तन ही आत्म-साक्षात्कार का एकमात्र साधन है। अन्य सारे प्रयास समय का अपव्यय मात्र हैं, क्योंकि उनसे कोई लाभप्रद परिणाम नहीं निकलता। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने *भागवत-धर्म* की इस पद्धति का उपदेश किया और यह भी बतलाया कि भारतभूमि में जन्म लेने वालों का यह दायित्व है कि वे श्रीकृष्ण के सन्देशों का, प्रमुख रूप से *भगवद्गीता* के संदेश का, प्रचार-प्रसार करें। जब कोई *भगवद्गीता* की शिक्षाओं को ठीक से समझ जाय, तो उसे चाहिए कि आत्म-साक्षात्कार के लिए अधिक प्रकाश प्राप्त करने हेतु *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन करे।

त्वं नः सन्दर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ।

कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आपने; नः—हम सबों को; सन्दर्शितः—मिलाया है; धात्रा—भाग्य से; दुस्तरम्—दुर्लभ; निस्तितीर्षताम्—पार करने की इच्छा करने वालों के लिए; कलिम्—कलियुग को; सत्त्व-हरम्—अच्छे गुणों को हरण करने वाला; पुंसाम्—मनुष्य का; कर्ण-धारः—कप्तान; इव—सदृश; अर्णवम्—समुद्र ।

हम मानते हैं कि दैवी इच्छा ने हमें आपसे मिलाया है, जिससे मनुष्यों के सत्त्व का नाश करने वाले उस कलि रूप दुर्लघ्य सागर को तरने की इच्छा रखने वाले हम सब आपको नौका के कप्तान के रूप में ग्रहण कर सकें।

तात्पर्य : कलियुग मनुष्यों के लिए अत्यन्त खतरनाक है। यह मानव जीवन तो आत्म-साक्षात्कार के ही निमित्त मिला है, किन्तु इस युग की करालता के कारण लोग जीवन के लक्ष्य को पूरा भूल चुके हैं। इस युग में आयु क्रमशः घटती जायेगी। लोग अपनी स्मृति, कोमल भावनाएँ, बल तथा उत्तम गुण खो देंगे। इस युग की विषमताओं की सूची इस ग्रन्थ के बारहवें स्कन्ध में दी गई है। अतः जो लोग इस जीवन का उपयोग आत्म-साक्षात्कार में करना चाहते हैं, उनके लिए यह युग अत्यन्त दुष्कर है। लोग इन्द्रियतृप्ति में इतने अधिक व्यस्त हैं कि वे आत्म-साक्षात्कार को पूरी तरह भूल चुके हैं। उन्मत्तता से वशीभूत वे साफ-साफ कहते हैं कि आत्म-साक्षात्कार की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे यह नहीं समझते कि यह संक्षिप्त जीवन आत्म-साक्षात्कार की विशाल यात्रा का एक मात्र क्षण है। समूची शिक्षा-पद्धति इन्द्रियतृप्ति की ओर उन्मुख है और यदि कोई विद्वान इस पर थोड़ा भी सोचे, तो वह देखेगा कि इस युग के सारे बच्चों को जानबूझ कर तथाकथित शिक्षारूपी वधशालाओं में भेजा जा रहा है। अतएव विद्वान पुरुषों को इस युग के प्रति सचेष्ट रहना है और यदि वे इस घोर कलियुग रूपी समुद्र को पार करना चाहते हैं तो उन्हें नैमिषारण्य के ऋषियों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और श्री सूत गोस्वामी या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि को नाव के कर्णधार के रूप में स्वीकार करना चाहिए। वह नाव *श्रीमद्भागवत* या *भगवद्गीता* के रूप में ही भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश ही है।

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ।

स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ब्रूहि—कृपया कहें; योग-ईश्वरे—समस्त योग शक्तियों के स्वामी; कृष्णे—भगवान् कृष्ण; ब्रह्मण्ये—परम सत्य; धर्म—धर्म; वर्मणि—रक्षक; स्वाम्—अपना; काष्ठाम्—धाम; अधुना—इस समय; उपेते—चले गये; धर्मः—धर्म; कम्—किसकी; शरणम्—शरण में; गतः—गया हुआ।

चूँकि परम सत्य, योगेश्वर, श्रीकृष्ण अपने निज धाम के लिए प्रयाण कर चुके हैं, अतएव कृपा करके हमें बताएँ कि अब धर्म ने किसका आश्रय लिया है ?

तात्पर्य : धर्म मूल रूप से साक्षात् भगवान् द्वारा स्थापित आचार-संहिता है। जब भी धर्म के सिद्धान्तों का दुरुपयोग होता है या उसकी उपेक्षा की जाती है, तो धर्म की स्थापना करने के लिए भगवान् स्वयं अवतरित होते हैं। इसका उल्लेख *भगवद्गीता* में किया गया है। यहाँ पर नैमिषारण्य के ऋषि-मुनि इन्हीं सिद्धान्तों के विषय में पूछ रहे हैं। इस प्रश्न का उत्तर आगे दिया गया है। *श्रीमद्भागवत* भगवान् की दिव्य वाणी का स्वरूप है। इस प्रकार यह दिव्य ज्ञान एवं धर्म का पूर्ण स्वरूप है।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत, “मुनियों की जिज्ञासा” नामक प्रथम अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।